!! राधा स्वामी !!

प्राक्कथन

पुस्तकों की श्रृंखला में प्रस्तुत पुस्तक '**प्रश्नोत्तरी ज्ञान - गंगा**' एक बहुमूल्य पुस्तक है। इसमें साधकों के सत्संग सम्बन्धी प्रश्नों का समाधान किया गया है। यह वह ज्ञान गंगा है जिसमें स्नान करने से मनुष्यों के मन पर जमी हुई अज्ञानता रुपी कालिख दूर हो जाती है और इसमें गोता लगाने पर अन्त:करण निर्मल हो सकता है। इसका अध्ययन कर उस पर अमल करने से मनुष्य को उसी प्रकार शान्ति प्राप्त हो सकती है जैसे गंगा की फुहारों से मनुष्य को शीतलता प्राप्त होती है।

मेरे परम आराध्य हजूर महाराज कैप्टन लाल चन्द जी अध्यात्म ज्ञान के अनुभव की जीती जागती तस्वीर हैं। जैसे गंगा में कलकल ध्वनि होती है, उसी प्रकार इनके अन्दर वह राम नाम हर समय गूंजता रहता है। इन्होंने किन्हीं शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया अपितु उस राम नाम के अनुभव के रुप में वह खुद ही शास्त्र स्वरुप है। जैसे शास्त्र ज्ञान के चक्षु हैं जो लोगों को सही मार्ग प्रशस्त करते हैं, उसी प्रकार यह महानुभाव ज्ञान के वह दिव्य नेत्र हैं जो अज्ञान में भटके लोगों को सही राह दिखाते हैं। इस पुस्तक में इन्होंने योग के जटिल प्रश्नों को इतने सरल तरीके से ब्यान किया है कि साधारण से साधारण सत्संगी भी इसे आसानी से समझ सकता है। जैसे किसी कड़वी दवाई को मीठा कोट लगाकर लेने से वह आसानी से ली जा सकती है, उसी प्रकार दर्शन शास्त्र के कठिन पेचिदे एवं उलझे हुए प्रश्नों को उन्होंने अत्यन्त सहज वह सरल तरीके से बात कर उन्हें आसानी से समझने योग्य बना दिया है। मुझे पुरी आशा है कि जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा वह पूरी तरह से लाभान्वित होगा।

पुस्तक के प्रकाशन में बहन राजकंवर धर्मपत्नी श्री गोपाल सिंह जी शेखाव (जयपुर) व स्नेहिल भ्राता श्री जयमल सिंह जी का अपूर्व योगदान अविस्मरणीय है। इसके साथ ही हमेशा से अपना आर्थिक सहयोग देने वाले आचार्य श्री एस.ई.साहब जिले सिंह सागवान जी की तो जितनी भी प्रंशसा की जाए वह कम है।

डा. कमला देवी

संस्कृत प्राध्यापिका

एम.एम. कालेज, फतेहाबाद

फोन नं. ०१६६७ – २२५५२०

भूमिका

'**प्रश्नोत्तरी ज्ञान – गंगा**' नामक पुस्तक लिखने का मेरा मुख्य उद्देश्य यह है कि जो सज्जन समाधि लगाकर किसी बात को जानने के इच्छुक हैं या जो मन की शान्ति व आत्म ज्ञान विषय के जिज्ञासु हैं तो उन्हें इस विषय सम्बन्धी सच्चाई से अवगत कराया जाए। साधकों या योगियों के मन पर बहुत तरह – तरह के संस्कार, शंका व भ्रम पड़े होते है इसलिए उनका ध्यान नहीं बनता है। यदि ये भ्रम शंका मन से हट जाए और मन मवित्र हो जाए तो मनुष्य की समस्या ही हल हो जाती है। जैसे कहा है ''**गुरु मिले तो भ्रम नसाहिं।**''

आचार्या **डा. कमला** ने यह इच्छा प्रकट की कि योगी व साधकों के लिए ज्ञान सम्बन्धी आवश्यक तत्वों से युक्त कोई पुस्तक लिखें। इसके लिए उसने अनेक प्रश्न मुझे लिखकर दिये और साथ ही कुछ अन्य सत्संगियों के प्रश्नों को भी इसमें सम्मलित कर दिया। प्रस्तुत पुस्तक में मैंने अपने अनुभव के आधार पर इन प्रश्नों का समाधान किया है। इस पुस्तक को ध्यान से पढ़कर समझने से प्यारे सत्संगी तथा योगी सज्जनों के बहुत से भ्रम व शंका दूर हो जायेंगे और उनका मन ठहर जायेगा जिससे योग साधना में उन्हें कोई कठिनाई नहीं होगी। इस पुस्तक से पहले मैंने साधकों, सत्संगियों व योगियों की सेवार्थ और भी कुछ छोटी – २ पुस्तकें लिखी हैं। यदि कोई इन सब पुस्तकों को पढ़ ले तो धर्म - कर्म के विषय में उसे किसी प्रकार का भ्रम व सन्देह नहीं रह सकता। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय का सज्जन इन पुस्तको को पढ़ सकता है क्योंकि सभी धर्म केरे अपने हैं। जब ईश्वर एक है तो भला धर्म कैसे अलग हा सकता है ? धर्म के विषय

में इस भिन्नता को मैंने समाप्त करने का प्रयास किया है। यदि पाठकों को इस पुस्तक के पढ़ने से व समझने से कोई लाभ हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

आपका हितैषी

कैप्टन लाल चन्द

गांव दान्दू, जिला चुरु

(राजस्थान)

दूरभाष : ०१५६२-२८३१२१,२८३५२१

प्रश्न – १ धर्म क्या है ?

उत्तर – धर्म का अर्थ है जो धारण किया जाए। दूसरा नियम पालन को भी धर्म कहते है। अर्थात धर्म जीवन व्यतीत करने का वह रास्ता है जिस पर चलने से मनुष्य का मानसिक, शारीरिक तथा आत्मिक जीवन शान्तिपूर्वक व्यतीत हो जाए। जहां तक अध्यात्म विषय का सम्बन्ध है इसमें आत्मा – परमात्मा के विषय में अनुभव करने के लिए नियम, आचार, जप तप, व्रत, पूजा-पाठ, भक्ति, साधना, योग आदि सब का उद्देश्य मनुष्य के द्वारा स्वयं अपने आप को अनुभव करने का है। और यही धर्म कहलाता है। जितने भी योगी, सन्त आज तक हुए हैं इन सबके द्वारा अपने स्वयं का अनुभव ही सबसे ऊंचा ज्ञान का ज्ञान की चोटी है। यानी "Self realization is All And everything"

प्रश्न – २ ईश्वर कहां है और उसका स्वरुप क्या है ?

उत्तर – ईश्वर तत्व सर्वज्ञ है। उसका कोई स्वरुप नहीं है। वह सब जगह व्यापक है। जैसे ईशोपनिषद में कहा है –

''ईशा वास्यमिदं सर्व यत् किं च जगत्यां जगत् ! ''

अर्थात् इस संसार में जो कुछ भी वस्तु या तत्व चलने फिरने वाला या चेतना सम्पन्न है, वह सब उस मालिक या ब्रह्म द्वारा आच्छादित है। अर्थात् समस्त जड़-चेतन में वह एक ही तत्व व्याप्त है, जिसे हिन्दी में इस प्रकार कहा गया है –

''जिधर देखता हूं, उधर तू ही तू है।

हर शै में जलवा तेरा हूबहू है।।''

यानी जल, थल, आकाश, पाताल व सभी लोक – लोकान्तरों में ईश्वर तत्व व्यापक है। यह लिखने बताने में समझ में नही आता है। यह अनुभव का विषय है।

प्रश्न – ३ शरीर में मन कहां रहता है ?

उत्तर - देखा तो मैंने है नहीं परन्तु अनुमान से कह सकता हूं कि दोनों आँखों के बीच में मन जब ठहर कर काम करता है तब यह सब इंन्द्रियों व शरीर पर नियन्त्रण करता है।

प्रश्न – ४ क्या मन और दिल एक ही हैं ?

उत्तर - हां यह दोनों एक ही हैं। मन हिन्दी का शब्द है और दिल उर्दू का शब्द है।

प्रश्न – ५ आत्मा क्या है ?

उत्तर - यह ताप व प्रकाश रुप तथा आनन्द स्वरुप है। मनुष्य अपने शरीर में इन्द्रियों द्वारा जिस आनन्द का अनुभव करता है, वह आत्मा का ही गुण है। योगी लोग योग – साधना में अपने अन्दर प्रकाश व अनुभव करके आनन्द का अनुभव करते हैं, वह आत्मा स्वरुप प्रकाश है। गहराई से इसे यूं समझे कि यह मनुष्य शरीर भोजन से बनता है और यह भोजन सामग्री जमीन से उत्पन्न होती है। जब तक सूर्य, चन्द्रमा और दूसरे ग्रहों की रोशनी जमीन पर न आए तो अन्न तथा भोजन सामग्री नहीं बनेगी। यानी भोजन सामग्री सूर्य व अन्य ग्रहों के ताप व प्रकाश से बनती है। एक दिन के भोजन से किसी उम्र तक ठीक हजम होने पर एक बून्द खून या रक्त की बनती है। ४० बून्द रक्त से एक बून्द उर्जा की बनती है। ४० बून्द उर्जा से एक बून्द वीर्य की बनती है जिससे मनुष्य पैदा होता है। यह वीर्य ही शरीर में जीवन शक्ति है। योगी जब योग साधना में मन को एकाग्र करता

है तो उसकी विकिरणधारा ऊपर को चढ़ती है और यह जाकर वीर्य जो जीवन शक्ति है उससे सम्पर्क करती है और इससे प्रकाश या अनुभव होता है जो आत्मपद कहलाता है।

योग में प्रकाश के अनुभव का विशेष आनन्द है और इस प्रकाश का अनुभव वही साधक कर सकता है जिसका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य कायम है। इससे स्पष्ट है कि यह ताप व प्रकाश ही आत्मा है।

प्रश्न -६ आत्मा व सुरत में क्या अन्तर है ?

उत्तर -मनुष्य चार तत्व के मेल से बनता है - शरीर, मन , आत्मा और सुरत। यह सुरत परमात्मा का छोटा अंश है जो यहां खेल खेलने आती है। इसका कोई रुप नहीं है। मनुष्य के शरीर में सब खेल या लीला इसी ही सुरत का है । बाकी सब तत्व आपने – अपने स्थान पर जरुरी हैं। इनके मेल से ही यह सुरत खेल करती है और भिन्न-२ रुपों में इस संसार रुपी नाटकशाला में भाग लेती है। यह कहीं पति, कहीं पत्नी तो कहीं बाप, बेटा, भाई, डाक्टर, अध्यापक, चोर, ठग, दुष्ट व सज्जन इत्यादि बन कर खेल खेलती रहती है। यह सुरत अपने स्थान से हट जाती है तो सब खेल यानी लीला समाप्त हो जाते हैं। जैसे जब मनुष्य गहरी नींद में होता है तब उसकी सब लीला रुक जाती है और जब यह शरीर को छोड़ जाती है तब सब खेल ही खत्म हो जाता है। सन्तों ने इस सुरत की खोज की है। शास्त्रों में इसे विशुद्ध आत्मा कहा जाता है जो स्पष्ट नहीं है। तो आप समझ गई होगीं कि आत्मा प्रकाश रुप है। उदाहरण के तौर पर एक योगी ध्यान योग में प्रकाश का अनुभव करके बहुत आनन्द ले रहा है और एक अन्य योगी अन्तर में शब्द का अनुभव करके अति शान्ति का अनुभव कर रहा है। अब जो योगी अन्तर में प्रकाश को देख रहा है या शब्द को सुन रहा है या अन्य कोई योगी अपने साधन में लोक-लोकान्तरों का या ग्रह

का अनुभव कर रहा है तो यहां प्रकाश या शब्द और वस्तु है तथा उनको अन्दर अनुभव करने वाली और वस्तु है। यह जो प्रकाश व शब्द का अनुभव करती है, यह सुरत है। अत: स्पष्ट है कि प्रकाश आत्मा है और उसको देखने वाली वस्तु सुरत है। यह जितने भी अनुभव मनुष्य बाहर – भीतर कर रहा है, सब सुरत का काम है। मनुष्य किसी हाजिर जीवित महापुरुष की संगत से योग साधन करके इस सुरत का सहज ही अनुभव कर सकता है। परन्तु वैसे कोई पुस्तकों से, प्रवचनों से इसे समझना चाहे तो इस सुरत का सही ज्ञान नहीं ले सकता है, क्योंकि यह विषय अनुभव का है।

प्रश्न – ७ क्या पुनर्जन्म होता है ?

उत्तर – पहले तो मुझे यह बात दिमाग में ही नहीं थी क्योंकि मैं जिस अवस्था में रहता हूं वहां पुनर्जन्म वाली स्थिति नहीं है। परन्तु यह बात तो मेरे लिए ही हुई दूसरा इसलाम और ईसाई धर्म या सम्प्रदाय भी इसको नहीं मानते है। परन्तु मेरे न मानने से या इसलाम और ईसाई धर्म के न मानने से कोई फर्क नहीं पड़ता । जैसे कोई सज्जन पूरा दिन सोया रहता है और सूर्यास्त के बाद होश में आता है, यानी जागता है और कहता है कि आज सूर्य नहीं निकला तो यह बात उसके विचार से तो ठीक है कि उसने सूर्य नहीं देखा परन्तु सच्चाई तो यह है कि सूर्य निकला था। कहने का भाव यह है कि मेरे न मानने और इसलाम और ईसाई धर्म के संस्कार वाले सज्जनों के न मानने से तो पुनर्जन्म की बात सत्य नहीं मानी जा सकती है। यह तो अनुभव का विषय है जो योग साधक करके समझा जा सकता है। हिन्दू धर्म में इस पुनर्जन्म की बहुत चर्चा है और यह हम रोज दुनिया में देखतें हैं और बात को बुद्धि के स्तर पर समझते हैं। परन्तु एक तो पुराने संस्कार और

पुरानी लिखी बातें आज का मनुष्य स्वीकार नहीं करता क्योंकि आज का मनुष्य वैज्ञानिक और बुद्धिमान है। पहले मनुष्य को जिस तरह कहा जाता था वह अन्ध – विश्वास कर लेता था परन्तु आज समय के साथ – साथ सब कुछ बदल गया है जैसे :

''जमीं बदलती है, आसमां बदलता है।

मकीं –मकां जो बदले, समय बदलता है।।

नहीं है एक बतीरे पर यह जहां कायम।

सभी बदलते हैं जब सारा जमां बदलता है।।

अत: इस बात का सही उत्तर तो मैं भी तभी दे सकता हूं जब मरने के बाद मुझे यह समझ या ज्ञान रहे कि मैं पहले वहां था और अब मैंने यहां जन्म लिया है। परन्तु अफसोस है कि आजतक किसी सन्त, अवतार, नबी, बली या पैगम्बर ने शरीर के छोड़ने के बाद वापस आकर यह नहीं कहा कि मैंने अब वहां जन्म लिया है और न किसी हाजिर सन्त ने यह बात कही कि मैं पहले जन्म में कहां था। अत: आपके इस प्रश्न का उत्तर मैं अपने योग साधन के अनुभव के आधार पर ही बता सकता हूं। आदमी मरने के बाद अपने विचारों या आसक्ति के अनुसार ही दूसरा शरीर शरीर धारण करता है। जैसे मृत्यु के समय यदि मनुष्य का लगाव स्थूल पदार्थो जैसे मकान, दुकान, धन, पुत्र, पत्नि इत्यादि में है तो वह इसी लोक में दोबारा आ जाता है क्योंकि स्थूल वस्तु में भारीपन होता है और वह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति के अनुसार ऊपर के लोकों में न जाकर नीचे ही आ जाता है। और यदि कोई मनुष्य मरते समय सूक्ष्म विचारों यानी स्वर्ग या अन्य लो-लोकान्तरों की कल्पना में रहता है तो वह कुछ समय तक इन्हीं लोक-लोकान्तरों का प्राप्त

करता है और यदि कोई योगी या साधक प्रकाश में रहता है तो अन्त में वह प्रकाश में ही चला जाता है और वह सूक्ष्म रुप से इस प्रकाश के मण्डल में रहता है। परन्तु यह प्रकाश का मण्डल भी स्थायी नहीं है। जब यह प्रकाश का मण्डल टूटता है तो वह वापिस उसी लोक में आ जाता है। परन्तु मेरा जो साधन है वह यह कि सुरत शब्द के साथ लगी रहती है और इस आधार पर मेरा यह अनुभव है कि जब अन्तिम अवस्था में सुरत इस शब्द रुपी धारा के साथ शरीर को छोड़ देती है तो वह उसी परमात्मा में लीन हो जाती है, फिर उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता। जैसे बून्द पानी में मिलकर पानी का रुप ही बन जाती है उसी प्रकार यह बून्द रुपी सुरत उस शब्द परमात्मा में मिल कर उसी का स्वरुप बन जाती है। यहां पुनर्जन्म की बात ही नहीं रह जाती है। ऐसा मेरा अपना अनुभव है, कोई दावा नहीं।

प्रश्न – ८ क्या मनुष्य को मरने के बाद मनुष्य की ही योनि मिलती है ?

उत्तर आमतौर पर मनुष्य को मनुष्य की ही योनि मिलती है क्योंकि उसने जीवन में जो संस्कार ग्रहण किए हैं या कोई इच्छा या वासना रखी है, वह मनुष्य के ही संस्कारों के अनुसार थे। अन्त समय में भी उसके सामने वही संस्कार आएगें और उन संस्कारों के अनुसार उसकी सुरत मनुष्य जन्म की तरफ आकर्षित होगी जैसे कहा है

''उन्त मता सो गता''

परन्तु यदि किसी ने मनुष्य के अतिरिक्त किसी और योनि के साथा सम्बनध जोड़ लिया है तो अन्त समय में उसके सामने उसी योनि के ही संस्कार आएगें और वह मनुष्य के अतिरिक्त किसी दूसरी योनि में भी जा सकता है। वैसे तो हम दुनिया में यह बात खुली आँखों से देखते हैं कि कुछ मनुष्यों ने शक्ल से तो मनुष्य का शरीर धारण किया हुआ है

परन्तु उनके काम जानवरों जैसे होते हैं। शास्त्रों मे शास्त्रों में जड़ भरत की कथा आती है कि जड़ भरत जंगल में जाकर योग साधन करते थे। वृक्षों की छाल, पत्ते खाकर जीवन निर्वाह करते थे और मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण की इच्छा लेकर योग अभ्यास करते थे और मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण की इच्छा लेकर योग अभ्यास करते थे परन्तु वहां पर उनका किसी हिरण के बच्चे से लगाव हो गया और वह उसका पालन पोषण करने लगे। अंत में जिस समय वह प्राण त्यागने लगे तो हिरण का विचार उनके मन में आया कि यदि वह हिरण का बच्चा जो जंगल में गया हुआ है, यहां आ जाए तो मैं उसे पानी पिला दूं और इसी इच्छा के साथ उन्होंने प्राण त्याग दिए। कहा जाता है कि वह जड़ भरत फिर हिरण योनि में पैदा हुए और उन्हें अपने पिछले जन्म की याद थी।

कहने का भाव यही है कि अन्त समय में यदि कोई मनुष्य किसी कुत्ता, बिल्ली या अन्य किसी पशु, पक्षी से प्रेम करने के कारण उसी याद में प्राण त्यागता है तो सिद्धान्त के अनुसार वह मनुष्य योनि से पशु, पक्षी की योचिन में भी जा सकता है। अतः बात स्पष्ट है कि

''अन्त मता सो गता।''

प्रश्न – ९ अगर मरते समय किसी जीव को गुरु का स्वरुप प्रकट हो जाए तो वह कहां जाता है ?

उत्तर – इस प्रश्न का उत्तर भी मैं अपने अनुमान और साधन अभ्यास के अनुसार ही बता सकता हूं कि मैं हर रोज मरता हूं और फिर शरीर में आ जाता हूं। दूसरा, मैंने अपने

गुरु स्वरुपका ध्यान प्रारम्भ में १५ या २० मिनट तक यह जानकर किया था कि यह ही कुल मालिक या परमात्मा है। तब मुझे सार शब्द प्रकट हो गया था जिस को नाम राम – नाम या निज – नाम कहते हैं। उसके बाद वह नाम आज ८१ साल की आयु में भी हर समय अनुभव करता रहता हूं पर गुरु स्वरुप कभी नहीं आता है।

आपके इस प्रश्न का उत्तर मैं अपने अनूभव के आधार पर यह देता हूं कि गुरु का स्वरुप अन्त समय में जिस जीव के सामने आता है, उस आत्मा को इसी ही लोक में किसी सत्संगी माता – पिता के घर पर आकर जन्म लेना चाहिए जहां उसको सत्संग, साधन के संस्कार मां के पेट से ही मिलने शुरु हो जाएगें और जो उसकी इच्छा, चाह या संकल्प पहले पूरे नहीं हो सके, वह अवश्य पूरे होगें।

कुछ महापुरुष अपने सत्संगों में जीवों को यह विश्वास दिलाते हैं कि जहां गुरु जाएगा वहीं तुम चले जाओगे। यह तो एक हौंसला व एक आशावादी विचार है। यह आत्मा अपने निज घर या मुकाम पर नही जा सकता है क्योंकि भक्त ने गुरु के स्वरुप को समझा ही नहीं है, उसने तो केवल बाहरी स्वरुप से प्रेम किया है जो स्थूल रुप है। और स्थूल रुप उसे कभी ऊपर नहीं ले जा सकता है। बात बहुत गहरी है, अनुभव से ही समझी जा सकती है। राधास्वामी वाणी में कहा है :-

''गुरु का ध्यान कर प्यारे, बिना इसके नहीं छुटना ।

नाम के रंग में रंग जा, मिले तोहे धाम निज अपना।।''

प्रश्न – १० क्या चौरासी लाख योनियां होती हैं ?

उत्तर – मैंने खुद ने इस विषय का अनुभव नहीं किया है।जिन महापुरुषों ने अनुभव किया है उन्होंने अपने अनुभव लिखे हैं। वैसे इस दुनिया को देखते हैं तो इस पृथ्वी पर जीवों की असंख्य योनियां नजर आती हैं। समुद्र में और आकाश में अनगिनत योनियां हैं।आध्यात्मिक महापुरुषों या साधकों ने अपनी – अपनी प्रकृति के अनुसार त्रिकुटी में ध्यान लगाकर जिन लोकों, ग्रहों व योनियों का अनुभव किया था, वह अपने ध्यान की एकाग्रता के अनुसार अपने अनुभव अपनी पुस्तकों में लिखे हुए हैं। अब वे कहां तक सत्य हैं या असत्य हैं, कहा नहीं जा सकता। जब तक दूसरा महापुरुष खुद अनुभव न करे तब तक हां या ना करना लकीर पीटने वाली बात होगी। यह अध्यात्म का विषय एक प्राकृतिक विज्ञान है जो केवल अनुभव से जाना जा सकता है। आज कल अनुभव तो बहुत कम सज्जन करते हैं अपितु अपनी बुद्धि से उल्टा सीधा लिखकर ग्रन्थ भर देते हैं। ऐसे सज्जन खुद भी भ्रमित हैं और दूसरों को भी भ्रम में डालते हैं।

प्रश्न – ११ मुक्त मनुष्य की आत्मा मृत्यु के बाद सूक्ष्म रुप में बनी रहती है या लीन हो जाती है ?

उत्तर – आपका प्रश्न ऐसा है जैसे आप इस विषय में कुछ जानती हैं परन्तु आपको अपने ज्ञान पर विश्वास नहीं है। पहली बात तो यह है कि मुक्त वही मनुष्य कहलाता है जो इस शरीर में रहते हुए स्थूल व सूक्ष्म लोक की सब वस्तुओं, विचारों, भावों व चमत्कारों से मुक्त रहता है। अब सूक्ष्म लोक में तो उसी की ही आत्मा रहती है जो इन विचारों, भावों व चमत्कारों को सत्य मानता है और उनका आनन्द लेता है। जो इस शरीर, विचार, भाव,

संकल्प व चमत्कारों को सत्य नहीं मानता और इनको देखी, सुनी, पढ़ी हुई बातों या मन पर पड़े हुए संस्कार के रुप में मानताहै तथा इनमें कोई सच्चाई नहीं देखता तो वह सीधा कारण लोक में चला जाता है। ऐसा साधक या योगी सूक्ष्म लोक को सच नहीं मानता। उसकी दृष्टि में यह सारे विचार, नजारे, लोक-लोकान्तर असत्य है क्योंकि वह जानता है कि ये है नहीं, केवल भासते हैं। ऐसी स्थिति में सुरत केवल सार शब्द का अनुभव करती है और वह हमेशा में रहते हुए मुक्त रहता हैं यानी कि वह जीवनमुक्त अवस्था में है जैसे कहा है:

''जाको दर्शन इत है, वा को दर्शन उत।

जाको दर्शन इत नहीं, वा को इत न उत।।''

तो जो शरीर मे रहते हुए मुक्त हैं और उसे किसी तरह का कोई लगाव या बन्धन नहीं है तो वह सिद्धान्त के अनुसार सीधा कारण लोक में जाएगा। यानी तत्व तत्व में लीन हो जाएगा। कहने का भाव यह है कि जिस सज्जन ने शरीर में रहते हुए मुक्त अवस्था का अनुभव कर लिया है जो सबसे ऊंची बात है तो शरीर छोड़ने पर उसकी सुरत शब्द रुपी परमात्मा में लीन हो जाएगी।

प्रश्न -१२ आवागमन के विषय में आपका क्या अनुभव है ?

उत्तर - मुझे लगभग २४ साल की आयु तक कोई भी आवागमन का भ्रम नहीं था क्योंकि मेरा धर्म का कोई संस्कार ही नहीं था। इस शब्द का भी कोई ज्ञान नही था क्योंकि राजस्थान के पिछ़डे इलाके में पैदाइश थी । बचपन जैसा होता है, खुशी, खेल-कूद में बीत गया। सेना में भर्ती होने के बाद भी ऐसी कोई धर्म - कर्म की बात नहीं सुनी। हा, एक सूबेदार जो व्यास का सत्संगी था उससे कुछ धर्म - कर्म के संस्कार मिलक

जिसके कारण मैं कई महापुरुषों से मिला और अन्त में मेरी मुलाकात महाराज पं. फकीर चन्द से हुई जिनके सम्पर्क में आते ही मुझे पहले ही दिन उस राम नाम का अनुभव हो गया और कुछ ही सालों में यह विवेक व ज्ञान हो गया कि यह खेल क्या है ? और यही वह ज्ञान है जिसकी समझ आने पर मनुष्य का आवागमन का कोई भ्रम नहीं रहता है।

हम इस दुनिया में देख रहे है कि रोज मनुष्य पैदा होते है और मरते हैं। अगर कोई इस बात को न माने तो मत माने। आवगमन तो है जिसे हम यहां रोज दुनिया में अपनी आँखों से देख रहे हैं। इस मरने और पैदा होने का नाम ही धर्म - कर्म में आवागमन है और यह हो रहा है। यह कुल मालिकों की मौज का खेल है। यह मनुष्य की सुरत कुल मालिक का अंश है जो यंहा खेल ने आती है, उसकी रजा से खेलती है और जब खेलते - खेलते थक जाती है तो वापिस जाने की इच्छा करती है तथा योग साधन करके यहां ही अनुभव कर लेती है कि शरीर छोड़ने के बाद कहां जाऊंगी ? लेकिन जब तक जीव गुरु से ज्ञान लेकर इस भेद को जान नहीं लेता तब तक उसका आवागमन समाप्त नहीं होता है। इस आवागमन से उसका छुटकारा तभी सम्भव हो सकता है जब गुरु ज्ञान से उसको पूर्णतया वैराग हो जाए और यहां उसका किसी भी वस्तु, मनुष्य तथा भाव - विचार से कोई लगाव न रहे। वह जब तक जीवित रहे, मुक्त अवस्था में रहे। ऐसी स्थिति आने पर शरीर छूटने पर उसकी सुरत सीधी परमात्मा रुपी तत्व में लीन हो जाएगी। यह बात मेरे अनुभव में आई है। परन्तु यह सब खेल मौज मालिक का है।

मैं अपने सत्संगो में यह बताता रहता हूं कि भाई मेरे दोनों हाथों में लड्डू हैं। मैं इस आवागमन वाली बात का अधिक समय तक अनुभव करता रहता हूं। यदि अन्त समय तक यह होश रहा और मेरी सुरत उस नाम की धारा के साथ रही तो मैं

वापिस नहीं आऊंगा और होश न रहा तो कोई दावा नहीं। परन्तु यहां वापिस आने की भी मुझे बहुत प्रसन्नता होगी क्योंकि मैंने यह जीवन गुरु कृपा से स्वर्ग जैसे सुख का अनुभव करते हुए जिया है। दूसरी बात मुझे आवागमन का कोई बहम नहीं है। मैंने अपना जीवन मालिक की मौज पर छोड़ दिया है और उसकी मौज में मैं खुश हूं। जैसे कजहा है कि

''लाई हयात ले चली कजा चले।

न अपनी खुशी आए न अपनी खुशी चले।।''

अत: इस विषय में मेरा अनुभव यह है कि कोई माने या न माने, आवागमन तो है और यह तभी छूटेगा जब गुरु से सुरत शब्द का साधन सीखकर अभ्यास करके जीव अपनी 'मै' नहीं मिटा देता और तब इस 'मै' के साथ 'तू' भी चली जाती है। फिर गुरु से इस अगम का भेद मिलने पर जीव के सब बन्धन यानी लगाव समाप्त हो जाते है और उसे पूर्ण वैराग हो जाता है। जैसे कहा है:

''गुरु ने दीना अब भेद अगम का, सुरत चली तज देश भ्रम का।

बल पाया अब विरह मरम का, भटकन छूटा दैरो हरम का।।''

''वर्षन लागा मेघ कर्म का, संशय भागा जन्म मरण का।

'तोड़ दिया अब जाल निगम का, सुख पाया अब हम दम - दम का।।'

फल पाया आज हम शम दम का, भंवर हुआ मन सेत पदम का।

फूंक दिया घर लाज शर्म का, काटा फंदा नियम धर्म का।।

ज्ञान ध्यान वाचक हम छोड़ा, भक्ति भाव का पहना जोड़ा।

भक्ति भाव की महिमा भारी, जानेंगे कोई सन्त पुजारी।।

समनाम सतपुरुष अपारा, चौथे माही करे दरबारा।

सुरत - शब्द मार्ग कोई पावे, सो हंसा चढ लोक सिधावे।।

सो मार्ग अब राधास्वामी गाई, कोई - कोई प्रेम भक्ति से पाई।

प्रश्न –१३ शरीर में सुख - दुख को अनुभव करने वाली चीज क्या है ?

उत्तर आप इसको मन कह सकते हैं। सुख - दुख सब मन से सम्बन्धित हैं। जो बात मन के अनुकूल हो जाए, वह सुख है और जो मन के प्रतिकूल हो, वह दुख है। अज्ञानता के कारण मनुष्य खुद यह सुख दुख पैदा करता रहता है और इनका फल भोगता रहता है। यह सब विचारों का फल है। Positive व शिव संकल्प के विचारों का फल सुख है और Negative व घटिया विचारों का फल दुख है। अर्थात यह सुख-दुख के मण्डल का विषय है।

मेरे जीवन में दुख नाम की कोई बात नहीं रही। मेरी समसया यह रही कि पूरे जीवन में कोई समस्या ही मेरे अनुभव में नही आई है। जिसको लोग समस्या समझते है, मै उसको Positive में ले लेता हूं। यानी उसमें कोई अच्छाई सोचता हूं और वास्तव में वह बात अच्छाई में बदल जाती है।

प्रश्न - १४ कर्म और भाग्य में क्या अन्तर है ?

उत्तर - कर्म और भाग्य एक ही बात है। परन्तु वैसे भाग्य का अर्थ है-हिस्सा या भाग और कर्म का अर्थ है-भाग्यों का समूह। आप किसी चीज को पाने की जो भी अच्छी या बूरी इच्छा करते हैं या किसी चीज से नफरत करते हैं तो वह आपका शुभ कर्म बन जाता है। यदि आपके संकल्प शिव है, सुन्दर है तो आपका शुभ कर्म बन जाता है और उसका फल आपके मन को प्रसन्न करने वाला होगा। यानी आपके मन के चअनुकूल होगा। इसके विपरीत यदि आपके संकल्प घटिया हैं, नकारात्मक हैं तो आपके अशुभ कर्म बन जाएंगे और उसका फल आपके मन के प्रतिकूल होगा। यानी वह दुखमय होगा। दिन भर हम जो अच्छा या बुरा सोचते रहते हैं यह हमारा भाग्य या कर्म बन जाता है। जैसे कहा हैं:

''जैसा बोओगे, वैसा ही काटोगे।''

जैसे किसान खेत में जो भी बोता है-गेंहू, मक्की, बाजरा इत्यादि तो वह उसको मिलता है यदि वह कांटे बोएगा तो कांटे ही मिलेंगे। अतः भाग्य को बनाने वाले हम खुद हैं। "Man is the creator of his luck" परन्तु ज्यादातर हम बोते तो बबूल हैं और चाहते हैं आम। यानी हमारे संकल्प तो हैं घटिया और हम चाहते हैं बढ़िया। जैसे कहा है:

''बोए पेड़ बबूल का तो आम कहां से खाए।''

प्रश्न -१५ कई बार न चाहते हुए भी अशुभ कर्म हो जाता है क्यों ?

उत्तर - यह बात एक के साथ ही नहीं अपितु सभी समझदार सज्जनों के साथ घटती रहती है। वह जानबूझ कर कोई अशुभ कर्म नहीं करना चाहते परन्तु फिर भी हो जाता है और बाद में पछताना पड़ता है। यह हमारा ही कोई अशुभ कर्म होता है जो हमको इसी ही

जन्म में भोगना होता है। शुभ कर्मो का तो कुछ पता नहीं चलता क्योंकि वह मन के अनुकूल होता है और उसमें हमको प्रसन्नता होती है परन्तु अशुभ कर्म मन के प्रतिकूल घटना होती है। अत: हमको दुख अनुभव होता है कि मैं चाहता नहीं था परन्तु ऐसा क्यों या कैसे हुआ ?

आप को मैं अपने जीवन का एक छोटा सा उदाहरण देता हूं। मैं १९७१ - ७२ में जालन्धर में जल सेना और स्थल सेना का भर्ती ऑफिसर था। भोजन मैं अपने हाथ से खुद ही बनाकर खाता था। एक दिन सुबह मुझे भर्ती करने कहीं बाहर जाना था। मैंने भोजन नहीं बनाया और एक शाकाहारी होटल में भोजन करने चला गया। मैंने अपनी रुचि के अनुसार हॉफ-हॉफ प्लेट सब्जी की मंगा ली और भोजन कर लिया। तब बैरे (वेटर) ने हॉफ प्लेटों के हिसाब से पैसे बिल में लगाकर मुझसे पूछा कि आपने कितने फुलके (रोटी) खाएं हैं। उस समय मेरे मुंह से एक फुलका कम निकला यानी यदि चार खाई तो मेंने तीन कहा और उसी के अनुसार मैंने बिल चुका दिया। बाद में मेरे मन में इस बात की बहुत ग्लानि हुई और में सोचने लगा कि मेरी इस ऑफसरी को लानत है मेरी जेब में पैसे थे और मैंने एक फुलके के लिए झूठ बोला जिसकी कीमत उस समय बहुत कम थी। मुझे अध्यात्म ज्ञान का अनुभव था और गुरु जी से सत्संग भी काफी मिले हुए थे। मैने गौर से विचार किया कि मैंने ऐसा कोई अशुभ कर्म भी नहीं किया है फिर यह ऐसा क्यों हुआ ? फिर मेरे विचार में यह आया कि हो सकता है जब मैं अपनी मां के पेट में था तो मेरी मां ने कुछ झुठ बोला हो और वह संस्कार मुझे आज भोगना पड़ा। यानी कुछ अशुभ कर्म तो था जिसके कारण मुझे इतने छोटे पने पर आकर मजबूरन झूठ बोलना पड़ा है इसी प्रकार से और भी ऐसे उदाहरण मेरे जीवन में है। यह कर्म गति है जो टारी नहीं

टरती। इसमें किसी के वश की बात नहीं है परन्तु दोष नीयत का है। यदि हम जाबूझ कोई अशुभ या गलत कर्म करते हैं तो यह दोष माना जाएगा। जैसे मनुष्य की हत्या बहुत बड़ा दोष है परन्तु यदि ड्राईवर से किसी मनुष्य की हत्या हो जाए तो वह कम दोष समझा जाता है। क्योंकि वह जानबूझ कर हत्या नहीं करता। अत: दोष सब नीयत का है। यदि जानबूझ कर हम कोई अच्छा या बुरा कर्म करते हैं तो उसका फल भोगना पड़ता है और जो न चाहते हुए अशुभ कर्म बन जाए तो वह किसी अशुभ कर्म का फल होता है। इतना समझने के लिए काफी है।

प्रश्न – १६ क्या गुरु जीवों के कर्म अपने ऊपर लेता है ?

उत्तर – मनुष्य शुभ या अशुभ कर्म जो भी करता है, उसका फल तो उसी को ही भोगना पड़ता है। जैसे कहा है :

''कर्म जो– जो करेगा तू वही फिर भोगना भरना।''

''कर्म प्रधान विश्वकर राखा, जो जस कीन्हा, तस फल चाखा।''

''कर्मगति टारी नाही टरे।।''

''कबीरा तोरी झूपड़ी गल कटियों के पास।

करेंगे सो भरेंगे तू क्यों भयो उदास।।''

और भी शास्त्रों मे कर्म फल के विषय में कथाएं मिलती है कि राजा, महाराजा, देवता, ऋषि-मुनी आदि सभी ने अपने – अपने अशुभ व शुभ कर्म का फल खुद भोगा है। अब प्रश्न यह है कि क्या गुरु अपने शिष्यों के अशुभ कर्म खुद अपने ऊपर ले लेता है ? यह

बात आजकल राधास्वामी पंथ के चेलों से सुनने में बहुत आरही है। इसके विषय में उपने गुरु महाराज पं. फकीर चन्द जी का मैं एक उदाहरण बताता हूं :

एक बार पं. फकीर चन्द जी महाराज का गुरु भाई जो दक्षिण हैदराबाद का एक सेठ था, कई वर्षो से बीमार था। उसने कई स्थानों से इलाज भी करवाया परन्तु रोग ठीक नहीं हुआ। एक बार जब परम दयाल जी का बसन्त में दक्षिण भारत का सत्संग दौरा था तब उस सेठ ने अपने लड़को को उनके पास भेजकर उन्हें घर बुलाया और अपनी तकलीफ बताई तब महाराज फकीर चन्द जी ने कहा कि भाई कर्म तो भोगने ही पड़ते हैं तब आप साधु – सन्तों का क्या काम है ? तब पं. फकीर चन्द जी ने कहा कि एक बात से आराम आ सकता है यदि आप कुछ दान कर दो तो सेठ जी ने सोचा कि लाख दो लाख रुपये अपने मन्दिर या आश्रम के लिए दान मांगते होंगे। सेठ जी ने अपने लड़कों की तरपु देख तो सबने सहमति दे दी। तब सेठ जी ने कहा कि आप जितना चाहे उतना दान ले लें। तब पं. फकीर चन्द जी ने कहा कि आप अपने सभी अशुभ कर्म जिनके कारण आप बीमार हैं, मुझे दान कर दो इससे आपको आराम आ जाएगा। और उन्होंने उसी समय किसी पण्डित को बुलाकर दान देने कि विधि से वेद मन्त्र पढकर सेठ जी से आकर अपने सत्संग के काम में लग गए। दो चार महीनों बाद पत्र आया कि सेठ जी विल्कुल स्वस्थ हो गए हैं।

अब यह रहस्य क्या है ? पण्डित फकीर चन्द जी पूर्ण कामयोगी थे। उन्होंने सेठ जी के साथ एक खेल किया कि या तो यह मुझे अशुभ कर्म का फल दान कर देगा तो स्वस्थ हो जाएगा या यह शरीर छोड़ देगा और कष्ट से बच जाएगा। महाराज फकीर चन्द जी को इस विषय में कोई भ्रम नहीं था। वे जानते थे कि कौनकिसका कर्म

ले सकता है ? वह रहस्यज्ञाता थे उन्होंने यह खेल इसलिए किया कि यदि यह मन से दान कर देगा तो स्वस्थ हो जाएगा या फिर गुरु के घर चला जाएगा। खेल सब विश्वास का है। ऐसे खेल मैं भी कई बार करता रहता हूँ और मेरे खुद के ऐसे कई अनुभव हैं। परन्तु इससे लेख लम्बा हो जाएगा।

अब जहां तक Radiation (विकिरणधारा) की बात है वह यह है कि जब गुरु जी की अच्छी रेडियेशन से हमको खुशी, आनन्द प्रेम मिलता है तो सत्संगी जो दुखी आते हैं उनसे भी रेडियेशन निकलती रहती है जो गुरु जी पर भी असर करती है परन्तु जो गुरु जी नाम का साधन व अनुभव करता है यानी शब्द और प्रकाश का अनुभवी होता है, उस पर सत्संगियों की दुख तकलीफ की रेडियेशन असर नहीं करती है। जैसे एक डाक्टर दिन भर तरह-तरह के रोगियों को देखता है परन्तु उसे रोगियों के रोगों का प्रभाव अपने ऊपर रोकने की विधि मालूम होती है। अतः वह इलाज करता है, रोगियों को देखता है परन्तु उनके रोगों का प्रभाव उस पर नहीं होता है। इसी प्रकार जो महापुरुष आत्मतत्व का अनुभवी है तो उस पर सत्संगियों की घटिया रेडियेशन का प्रभाव नहीं होता है। और यदि ऐसा नहीं है तो उस पर उनका असर होता है और वह महापुरुष अपनी मंजिल से नीचे गिर जाता है। मैंने अपने जीवन में इस बात का अनुभव किया है और बहुत से गुरुओं का जीवन देखा है तथा उनका अंत भी देखा है। अतः संग का जबरदस्त प्रभाव है और यह संग दोष दोनों पर होता है चाहे वह गुरु हो या चेला। हां हजारों में कोई एक, दो हो सकता है जिस पर संग का प्रभाव न हो।

''जो रहिमन उत्तम प्रकृति का कर सकत कुसंग।

चन्दन विष व्यापे नहीं, लिपटे रहत भुजंग।।''

यही बात आप गुरु, चेलों की समझ लें। जो महापुरुष अपने सभभ प्रारब्ध, संचित व क्रियमान् कर्मों को ज्ञान की अग्नी में जलाकर भस्म कर देते हैं, वे हल्के फूल की महक की तरह जीवन जीते हैं और अन्त में तत्व में लीन हो जाते हैं। यह बात अनुभव की है।

प्रश्न – १७ क्या काल और माया अविनाशी हैं ?

उत्तर – काल नाम गति का है जो हमेशा चलायमान है और माया नाम मोहिनी है यानी भ्रम है। यह हमको भासती है परन्तु है नहीं। जैसे किसी रस्सी को देखकर हम उसे सांप समझ लेते हैं जो वास्तव में सांप नहीं है परन्तु हम को भासता हैं। उदाहरण के तौर पर मैंने अपने पूरे साहित्य में लिखा है कि मेरा रुप विश्वासियों मे प्रकट होता है और भिन्न-भिन्न तरह से सहायता करता है। परन्तु मुझे इसका कोई ज्ञान नहीं होता। यह उनके मन की माया है क्योंकि मैं होता नहीं हूं और उनको भासता हूं। यही बात जितने योगी, ज्ञानी, ध्यानी, नबी और बली हैं उनके साथ चमत्कार घटित होती है। उनके ध्यान में तरह-तरह के नजारे आते हैं तथा चमत्कार घटित होते हैं। वास्तव में वह है नहीं परन्तु उनको भासते हैं। अधिकतर साधक उसी माया लोक में फंसे हुए हैं। वो जिस रुप, रंग, नजारों को सत्य समझते हैं वो सच्चाई नहीं है अपितु जैसे उनके संस्कार हैं उसके अनुसार वह उनको भासते हैं। यह सब खेल संस्कारों का है जैसे हिन्दुओं को साधन अभ्यास में राम कृष्ण का रुप आता है तो मुसलमानों को मुहम्मद साहब का रुप या मक्का मदीना नजर आते हैं। यह सब माया है। जैसे संकार है, वैसा ही भासता है। किसी हिन्दू को मोहम्मद साहब नजारा नहीं आता और न ही किसी मुसलमान को राम-कृष्ण को

नजारा आता। यदि राम-कृष्ण ही सच होते तो सबको राम-कृष्ण का ही नजारा आना चाहिए था। अत: जिसको अन्दर भासता है वह सच्चाई नहीं है, माया है। इसी तरह सब सम्प्रदायों की बात है। भाव यह है कि काल और माया अविनाशी है। किसी जीवित अनुभवी महापुरुष से योग सीखकर जिसने अपना अनुभव कर लिया है और जिसके भ्रम व शंका समाप्त हो गए हैं और जो काल व माया के दायरे से ऊपर चला गया है, वही यह बात समझ सकता है। परन्तु ऐसा कोई विरला होता है। जैसे :

''कोटिन में कोई एक, जे नारायण चित्त।''

प्रश्न – १८ स्वप्न क्या होता है ?

उत्तर – स्वप्न देखी, सुनी या पढी हुई घटनाओं के संस्कार हैं जो जाग्रत व गहरी नींद के बीच भासते हैं। जो अच्छी या बुरी घटना जिसको देखकर, सुनकर या पढकर हम मोहित हो जाते हैं या नफरत करते हैं तो उसका संस्कार मन पर घर कर जाता है। यानी उसकी उमिट छाप मन पर पड़ जाती है। फिर वही घटना हमारे सामने जब हम जागने व सोने की स्थिति में होते हैं और हमारा मन काम करता है तो टूट-फूट कर या बिल्कुल स्पष्ट हूबहू नजर आती है।

इसे एक तरह से कर्म - भोग ही समझें जिसे हम थोड़े समय में भोग लेते हैं। अब रही इसके फल वाली बात तो आमतौर पर इस का कोई फल नहीं है। परन्तु हजारों में कुछ ऐसे भी सज्जन होते है जिनका मन बहुत ही पवित्र होता है और उनको होने वाली घटना पहले ही स्वपन में मालूम हो जाती है। जिसे वह स्वप्न समझते हैं वास्तव में यह उनके ध्यान की एकाग्रता है और होने वाली बात उसको पहले ही मालूम हो जाती है और फिर वही घटना जो उसने स्वप्न में देखी थी, घट जाती है। वह मनुष्य योगी या साधु

नहीं होता वह घटना उसके मन या ध्यान की एकाग्रता से घटित होती है, जिसे वह स्वप्न ही मानता है। ऐसे मनुष्य हजारों, लाखों में एक होते हैं। अतः स्वपन तो देखी, सुनी व पढी हुई घटनाएं है जो कर्म बन जाती हैं। उसको स्वप्न में भोगना ही उसका फल है।

प्रश्न – १९ जब मानव जाति एक है और सबका ईश्वर एक है तो इतने मत-मतान्तर व सम्प्रदाय क्यों हैं ?

उत्तर – जिस महापुरुष ने अपने योग साधन में जो भी अनुभव किया, वह उसकी प्रकृति के अनुसार और समय व समाज की आवश्यकतानुसार था। उस महापुरुष, पैगम्बर या अवतार ने जो अपने अनुयायियों के लिए अपना अनुभव समाज की भलाई के अनुसार लिखा, उसका नाम धर्म हो गया। जैसे राम के अवतार के समय रामायण लिखी गई तो कृष्ण अवतार के समय श्रीमद् भगवत गीता नामक ग्रन्थ लिखा गया। इसी प्रकार मुहम्मद साहब के समय में उस समाज में करेक परिवार के द्वारा अलग-अलग इष्ट बनाकर पूजा की जा रही थी तो मुहम्मद साहब के ध्यान में अन्दर से आवाज आई कि ऐ मुहम्मद ! खुदा एक है और उसकी इबादत होनी चाहिए। उस समय उन्होंने अपने संस्कारो के अनुसार तथा समाज व संस्कारों के अनुसार जो ग्रन्थ लिखा उसका नाम कुरान शरीफ हुआ और इसके लिए कहा गया कि हजरत मुहम्मद साहब को खुदा की तरफ से यह इलाम (ज्ञान) हुआ था और उसी के अनुसार तथा उन नियमों पर चलने के लिए हजरत साहब ने पूरा जोर लगाया कि खुदा एक है। उसका कोई रंग-रुप नहीं है और न ही उसकी कोई शक्ल सूरत है। उसकी ही इबादत होनी चाहिए। इसी ही समय के अनुसार ईसामसीह को अपने अपने ध्यान की एकाग्रता में जो भी अनुभव हुआ, वह लिखा गया ग्रन्थ बाईबल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार दूसरे महात्मा जैसे बुद्ध, महावीर या अन्य सम्प्रदायों के

जो महापुरुष हुए उन्होंने अपने समय में अपने संस्कार व ध्यान की एकाग्रता में जो अनुभव किया उसे ग्रन्थ रुप में लिखकर उसके अनुसार अपने ज्ञान का प्रचार किया। अत: यह जितने धर्म ग्रन्थ लिखे गये, ये सब उस समय के महापुरुषों के संस्कार, प्रकृति व अधिकार के अनुरुप थे और उन्हीं के नाम से ये सम्प्रदाय बन गए जो उस समय में समाज व समय की आवश्यकता के अनुसार सही थे। परन्तु उनका विश्व व्यापी तौर पर सत्य नहीं हो सकता क्योंकि यह तो उनके मन की एकाग्रता का अनुभव था। उन्होंने जो कुछ कहा, वह उस समय के लोगों के लिए सही था और लाभ की बात थी, परन्तु समय के अनुसार सब कुछ बदलता रहता है। आज बुद्धि और विज्ञान के युग में यदि कोई भी स्रम्प्रदाय इनमें से यह कहे कि हमारे पैगम्बर या अवतार ने जो कुछ कहा है या लिखा है यही सत्य है तो यह बात ठीक नहीं बैठती, क्योंकि धर्म विश्वास का विषय है। अगर यह बात सत्य होती तो हिन्दुओं के बहुत से ग्रन्थ लिखे हुए हैं, उनको ज्ञान हो जाना चाहिए था और उनमें एकता व भाईचारा होना चाहिए था परन्तु देखने में यह बात नहीं आती है।

इसी तरह सभी मुसलमान '**कुरान शरीफ**' पढ़ते हैं और नमाज, रोजा, जकात, खरात देते हैं तथा बहुत से हज भी करके आते हैं परन्तु उनमें शान्ति या एकता नहीं है। ईसाई धर्म के अनुसार सभी ईसाई चर्च इत्यादि जाते हैं और बाईबल को पढते हैं तथा जो उसमें लिखा हुआ है उसके अनुसार चलते हैं परन्तु जहां तक शान्ति, एकता व प्रसन्नता की बात है वह नजर नहीं आती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो इन सम्प्रदायों में लिखा हुआ है केवल वही सच्चाई नहीं है। उस समय और विश्वास रखने वाले लोगों को जो भी लाभ होता है, वह उनके धर्म ग्रन्थों का फल नहीं है अपितु लोगों के अपने ही विश्वास का फल है। अब रही बात परमात्मा की, वह तो पहले भी एक था और अब भी

पूरी मनुष्य जाति के लिए एक ही है। नाम उसका जो भी आपको प्यारा लगे वह रख लो क्योंकि उसका कोई रुप नहीं है। आप जिस रुप में उसको मान लेते हो, और विश्वास कर लेते हो उसी रुप में आपके विश्वास के अनुसार लाभ होगा। जैसे कहा है :-

''जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूर्त देखी तिन तैसी।''

मैंने अपने जीवन में यह अनुभव किया है कि मनुष्य जाति ने इस विज्ञान व बुद्धि के युग में हर तरह से उन्नति की है परन्तु धर्म के विषय में वह सच्चाई से बहुत दूर है। इसलिए धर्म के नाम पर हर जगह आपस में झगड़े फसाद होते रहते हैं। और आज एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का दुश्मन बना हुआ है। यदि मनुष्य यह समझ ले कि सभी मनुष्यों का परमात्मा एक है और धर्म भी एक है तो ये लड़ाई झगड़े काफी हद तक समाप्त हो सकते हैं। यहां धर्म का अर्थ है जो कुछ भी किसी को मिलता है, वह उसके आस विश्वास का फल होता है। अतः हम इन छोटे-छोटे सम्प्रदायों के अन्दर न उलझे और विश्वव्यापी तौर पर मनुष्यता के धर्म को अपना कर, अपने अलग-अलग सम्प्रदाय व मजहवों को छोड़कर उसकी जगह मानव धर्म या मजहबें इन्सानियत या "Self realization is All And everything" तो बात स्पष्ट है कि मनुष्य जाति का धर्म है - योग से अपने आप को जानना। यह बात चाहे वह हिन्दू है चाहे मुसलमान है या और किसी सम्प्रदाय का है, सभी पर समान रुप से लागू होती है। अतः धर्म की सबसे ऊंची मंजिल स्वयं को जानना है। तो मेरी दृष्टि में ये सम्प्रदाय आज के युग में झगड़े की जड़ है क्योंकि सच्चाई को जानने के लिए ऐसे कहा है :

"To be born in church is blessing,
But to be die in church is curse."

अर्थात किसी धर्म में पैदा होना मुबारिक है परन्तु उसी की रट लगाते – लगाते मर जाना व्यर्थ है। मेरा भाव यह है कि सच्चाई आपके अन्दर है और परमात्मा अंश रुप में हर इंसान के अन्र है उसको जानना और इस जीवन को सबके साथ मिलजुल कर हंसते खेलते जीना ही मनुष्यता है। और अपने आप को योग साधन से अनुभव कर लेना ही धर्म है।

प्रश्न – २० आज जब जगह – जगह सत्संग हो रहे हैं तो फिर भी लोग अशान्त क्यों हैं ?

उत्तर – सत्संग का अर्थ है सत् का संग करना। व सत् हर मनुष्य के अन्दर है और मनुष्य इसकी तलाश बाहर मन्दिर, चर्च तथा आश्रमों में या देवताओं के स्थानों पर कर रहा है। जैसे कहा है कि

''वस्तु कहीं ढूंढे कही, केही विधि आवे हाथ।

कहे कबीर तब पाईये, जब भेदी लीन्हा साथ।।

जब भेदी लीन्हा साथ, दई वस्तु लखाय।

कोटि जन्म का पंथ था, पल में पंहुचा जाये।।

अब जो जगह-जगह सत्संग की बात है यह तो एक फैशन बन गया है। सत्संग कराने वाले बहुत कम महापुरुष हैं जो वास्तव में सत् में रहते हों। सत् में रहने वाला महापुरुष मुक्त होता है किसी प्रकार का उसको कोई बन्धन नहीं होता और हर समय वह खुश रहता है। जैसे कहा है ***''सदा दीवाली साध के और आठों पहर आनन्द''।*** अगर सत्संग कराने वाला महात्मा खुद सत् में रहता है और मुक्त रहता है तथा हर समय हर

हालत में खुश या Smiling Face रहता है तो जो भी उसका दर्शन करेगा वचन सुनेगा या किसी चीज की या ज्ञान की इच्छा लेकर उसके पास जाएगा तो सहज ही उसका काम हो जाना चाहिए। और उस महापुरुष के प्रवचन से उसको शान्ति व आनन्द मिलना चाहिए। परन्तु ऐसा बहुत कम देखने में आता है। आजकल तो कोई धर्म की दो चार पुस्तकें पढ लेता है या सत्संग की कुछ बातें सुन लेता है और वह अपनी बुद्धि व विवेक से गुरुवाई का काम करना शुरु कर देता है। जबकि वह स्वयं शांत नही होता। यहां शांत से मेरा अर्थ यह है कि जो महापुरुष दिन में चार-पांच घन्टे अपने साधन में आन्तरिक शब्द या प्रकाश का अनुभव करता है तथा किसी पूर्ण अनुभवी गुरु से ज्ञान लेकर उसे समझ, विवेक व अनुभव है तो जो भी उसकी संगत में जाएगा उसके धर्म सम्बन्धी भ्रम शंका सब समाप्त हो जायेंगे। परन्तु जहां तक मेरा अनुभव है आज बहुत से सज्जनों ने बहुत से बड़े –बड़े आश्रम बना रखे है और अपनी बुद्धि, समझ व विवेक से लाखों लोगों को अपना शिष्य बनाया हुआ है परन्तु उनको खुद को अन्तर में शब्द व प्रकाश का अनुभव नहीं है। इसलिए वो सत्संगियों के रेडियेशन से अधिक अशान्त हैं क्योंकि अधिकतर अशान्त लोग ही सत्संग में जाते हैं। इसको कहा है ***''लोभी गुरु लालची चेला, दोनों नरक कुण्ड में खेला।''*** गुरु चेले इसलिए बनाते हैं कि उनको मान सम्मान मिले और धन मिले तथा चेले गुरुओं के पास इसलिए जाते हैं कि उनके सांसारिक कार्य पूरे हों। अत: लोगों की अशान्ति का कारण यही है कि जिस महापुरुष के पास लोग जाते हैं वह स्वंय ही अशान्त होते है तो जो खुद अशान्त है वह दूसरों को शान्ति कैसे दे सकता है ? जैसे कहा है :

''बन्धे को बन्धा मिला, केहि विध छूटन होय।''

कर सत्संग निर्बन्ध का, जो पल में ले छुड़ाय।।''

अब बड़ी बात यह है कि जिन महापुरुषों को गद्दी मिल जाती है तो वो किसी अनुभवी से पूछ भी नहीं सकते हैं क्योंकि गुरुवाई का घमण्ड, अनुभव और ज्ञान में रुकावट है। साधारण महापुरुष चाहे जितना भी अनुभवी क्यों न हो उसे शान्ति वाला मार्ग पूछने में यह गुरुवाई जबरदस्त रुकावट है। मेरा कहने का भाव यह है कि बहुत से महापुरुष इस समय में दूसरे सत्संगियों को मार्ग दिखाने की बात कहते हैं और पुस्तकें पढकर सुनाते हैं तो इसका अर्थ यह है कि उनकी अभी तक समाधि नहीं लगी है। यानी शब्द और प्रकाश में उनकी सुरत अभी तक नहीं ठहरी है। वे खुद बेचैन है और कई तरह का डर व भय उनके मन में है जैसे कोई गद्दी न छीन ले या उनका यह भेद न खुल जाए कि उनका खुद का मन एकाग्र नहीं है। अर्थात् उनकी खुद की समाधि नहीं लगती। अत: जिस महात्मा के पास लोग जाते हैं और उनको सन्तुष्टि नहीं मिलती तो दो में से एक झूठा है। चाहे लोह झूठा हो चाहे लुहार यानी या तो गुरु जी अनुभवी नहीं हैं या शिष्य को विश्वास नहीं है। परन्तु मैं बात महापुरुषों की कर रहा हूं। एक बार की बात है कि देहली में एक बार विश्व धर्म सम्मेलन हुआ जिसमें भारत के बड़े-बड़े सन्त बुलाये गये और उसके प्रबन्धक थे मुनि सुशील कुमार और सन्त कृपाल सिंह । उन्होंने मेरे गुर पं. फकीर चन्द जी को भी होशियारपुर से उस सम्मेलन में बुलाया। जब महाराज फकीर चन्द जी का बोलने के लिए नम्बर आया तो उन्होंने स्टेज पर उल्टा मुंह करके महात्माओं की तरफ बोलना शुरु कर दिया तो प्रबन्धक ने कहा कि महाराज आप पीछे मुंह करके प्रवचन दें क्योंकि पब्लिक पीछे बैठी हुई है। तब उन्होंने उसी स्थिति में खड़े होकर सब महात्माओं से कहा कि महात्माओं, मैं आप सबसे यह कहना चाहता हूं कि आप मन, वचन, कर्म से पवित्र होकर अपने अन्दर शब्द और प्रकाश का अनुभव करते हुए नीयत रखकर ज्ञान दें कि जो भी

आपकी संगत में आए और इच्छा लेकर आए मालिक उसकी इच्छा पूरी करे। यदि आप मन वचन कर्म से पवित्र होकर यह काम करेगें तो यह आपकी संगत खुशहाल हो जायेगी। आप शीशा हैं। जो भी आपके दर्शन करेगा, उसका कल्याण होगा। मेरा भाव यहां सत्संग कराने वाले महापुरुषों के लिए है कि पहले वे आप अनुभवी बनें फिर संगत तो आपके दर्शन से ही निहाल हो जायेगी।

तो आश्रमों की अधिकता और लोगों की अशान्ति का कारण मैंने अपने अनुभव के अनुसार बता दिया है और साथ ही सत्संग कराने वाले सज्जनों से मेरा यह निवेदन है कि यदि वे खुद अनुभवी नहीं है तो वे जनता को धोखा न दें, क्योंकि हमें सदा यहां नहीं रहना है। अतः ऐसा करने पर अन्तिम समय आपका अच्छा नहीं होगा। मैंने बहुत से महापुरुषों के अन्तिम जीवन को देखकर यह अनुभव किया है कि लोगों को प्रवचन देना और बात है तथा रहनी और बात है। अतः मैं तो यही कहूंगा कि पहले अपना जीवन बनाओ। खुद यदि अनुभवी हो और शान्त हो तो दूसरों को प्रवचन दो, नहीं तो भीड़ इकट्ठी मत करो क्योंकि भीड़ इकट्ठी करके प्रवचन देने वाला अन्त में परेशान हो जाता है। यह मेरा अनुभव है मैं अपने सत्संगों में स्पष्ट बाताता हूं कि मेरा रुप जगह-जगह विश्वास रखने वाले सत्संगियों में प्रकट होकर जरुरत के अनुसार उनकी सहायता करता है परन्तु मुझे इसका कोई ज्ञान नहीं होता तो यह रहस्य क्या है। रहस्य यह है कि हर इंसान के अन्दर अंश रुप में परमात्मा है और जब भी प्रेमवश या भयवश उसका मन एकाग्र होता है तो उसका मन ही गुरु, पीर, देवी, देवता आदि जहां भी उसका विश्वास है वह इष्ट रुप बनाकर उसकी सहायता कर देता है। अब कोई महापुरुष यदि खुद सत्संगियों में जाता हो और उनकी मदद करता हो और उसको इसका ज्ञान हो तो वे मेरा

मार्ग दर्शन करे ताकि मैं विश्वासी सज्जनों को गुमराह न करुं । और यदि मेरा अनुभव यह ठीक है तो आप महापुरुष कृपा करके अपनी स्टेज पर यह सच्चाई अपने अनुयायियों को बताने का कष्ट करें ताकि वे भटके नहीं और उनके भ्रम व शंका दूर हो जाए और इस बात को समझ जाए कि जो अन्दर में रंग, रुप, नजारे मैं देखता हूं ये तो मेरे ही विश्वास, संस्कार का फल है इससे आगे क्या है। वो अनुभव करने का यत्न करेंगें और परम शान्ति को प्राप्त कर सकेगें।

प्रश्न – २१ कोई गुरुवाई क्यों करता है ?

उत्तर – गुरुवाई करने के दो ही कारण हो सकता हैं-एक स्वार्थ भाव से तथा दूसरा निस्वार्थ भाव से। कुछ सज्जन अपना मान सम्मान व धन पाने की इच्छा से यह गुरुवाई करते हैं। इसके लिए वो चाहते हैं कि उनका आश्रम बन जाए और उनके शिष्यों की संख्या अधिक हो जाये और उनकी इच्छा से ऐसा हो भी जाता है। क्योंकि यह संसार संकल्पमय है जिसके जैसे संकल्प होते हैं उसकी वैसी ही दुनिया बन जाती है परन्तु ऐसे सज्जनों के संग से लोगों को शान्ति नहीं मिल सकती है। हां उनके दुनियावी काम अवश्य पूर हो जाते है, वह भी उनके विश्वास का ही फल होता है। इसमें गुरु का कोई हाथ नहीं होता है यहां आश्रम बनाना व चेले बनाना कोई दोष नहीं, क्योंकि बिना आश्रम के ज्ञान का प्रचार नहीं हो सकता और बिना चेले प्रचार किसको करेगें। परन्तु बात यहां नीयत की है इसके विपरीत यदि कोई गुरुवाई शिष्यों के कल्याण के लिए व अपने गुरु का ऋण उतारने के लिए करता है तो वह महात्मा धन्य है। इस गुरुवाई के कार्य में यदि वह अनुभवी है, सब तरह से मुक्त है और निस्वार्थ भाव से यह सब करता है तो उसके दर्शन व संग के

शिष्यों को लाभ होगा। यदि वह स्वयं शान्त है तो सत्संगियों को भी उसके संग से शान्ति मिलेगी।

प्रश्न – २२ अध्यात्म ज्ञान को रहस्य में क्यों रखा जाता है ?

उत्तर - यह कोई नई बात नहीं है शुरु से लेकर अब तक अध्यात्म रहस्य में चला रहा है। कबीर दास ने अपने शिष्य धर्मदास को कहा कि :

''धर्मदास तोहे लाख दुहाई,

सार भेद बाहर न जाईं।''

कबीर दास ने यह बात शायद इसलिए की कि उस समय तुर्कियों का जोर था और धर्म के बारे में स्पष्ट कहने का किसी को अधिकार नहीं था। धर्म के विषय में यदि कोई महात्मा नई बात कहता था तो लोग उसे सुनने के लिए तैयार नहीं होते थे और लोग उस जान से मार देते थे। शायद यही कारण है कि धर्म शुरु से रहस्य में चला आ रहा है।

परन्तु अब इस रहस्य को न खोलने के कई कारण हो सकते हैं एक तो यह कारण है कि जो बात या ज्ञान रहस्य में हो उसकी तरफ आर्कषण अधिक रहता है। दूसरा यदि यह रहस्य खोल दिया जाये तो आध्यात्मिक महापुरुषों को इतना मान सम्मान व धन नहीं मिलेगा। फिर उनके आश्रम कैसे चलेगें तीसरा यह कारण हो सकता है कि स्पष्ट बात कहने से अनधिकारी सत्संगयिों का विश्वास टूट जाता है जबकि अज्ञानी लोगों के कार्य अधिकतर अन्ध विश्वास में ही होते हैं और वे इस ज्ञान को समझने में असमर्थ होते हैं।

इस आधुनिक युग में अध्यात्म ज्ञान का रहस्य खोलने वाले पहले महापुरुष पं. फकीर चन्द जी होशियारपुर (पंजाब) के रहने वाले हुए हैं। उनका पूरा साहित्य इस अध्यात्म ज्ञान के रहस्य को खोलने से भरा हुआ हैं जिसे उन्होंने प्रमाण सहित लिखा हुआ है। दूसरा इस समय में मैं हाजिर हूं। जो इस रहस्य को खोल रहा है जैसे कबीर ने कहा कि:-

''न कुछ किया न कर सका, न करने योग्य शरीर।

जो कुछ किया सो हरि किया, भए कबीर कबीर।।''

मैं १९६२ से गुरु आज्ञा से सत्संग करता आ रहा हूं। जिन सत्संगियों का मेरे प्रति विश्वास हो जाता है और जब उनका मन एकाग्र हो जाता है तब मेरा रुप प्रकट होकर जरुरत के अनुसार उनकी सहायता करता है और मैं इस बात को उन सत्संगियों को व अपने सत्संगों में स्पष्ट बताता हूं कि मैं किसी के अन्दर प्रकट नहीं होता और न ही मुझे यह ज्ञान होता है कि कौन मेरा ध्यान करता हजै और मैं उसकी क्या मदद करता हूं। यह तो सत्संगियों के ही विश्वास का फल होता है। वास्तव में यह शक्ति भक्त व विश्वासी के मन में होती है। उसका मन ही उसके इष्ट का रुप बनाकर उसको नंगी आंखों से या स्वपन व समाधि की अवस्था में दर्शन देता है और उसका काम बना देता है। मेरे साथ यह घटना लगभग बीस सालों से घटती चली आ रही हैं जिसकी चर्चा मैंने अपने सत्संगों में की है। और अब पुस्तकों में भी लिखी है। यदि यह रहस्य मैं नहीं खोलता तो आज मेरा बहुत बड़ा आश्रम होता और कई लाख शिष्य होते। परन्तु मेरे गुरु महाराज जी की यह आज्ञा थी कि जो भी अपना अनुभव हो साफ बताना, रहस्य में मत रखना। आज इस बौद्धिक व वैज्ञानिक युग में मनुष्य हर बात के रहस्य को स्पष्ट जानने का अधिकारी है।

यदि वह योग साधन न भी करे तो कम से कम भ्रम शंका से तो मुक्त होगा ही। जैसे कालेज व स्कूलों में विद्यार्थियों को भर्ती करके जहां तक वो पढ़ते हैं पढा कर उनको सर्टीफिकेट दे दी जाती है कि अब तुम दुनिया में जाकर काम करो। इसी प्रकार यदि हमारे महात्मा चेलों को शिक्षा – दिक्षा देकर ज्ञान, विवेक देकर अनुभूति कराकर उनकें तरह – तरह के भ्रम शंकाओं को दूर करके यह सच्चाई बता दें तो उनका कल्याण हो सकता है और वे इस दुनिया में बहुत ही काम के मनुष्य बनकर अपने व दूसरों के जीवन को सुख शान्ति का बना सकते हैं। और यह मनुष्य जाति अपने आन्तरिक वैर, विरोध व ईर्ष्या का भाव को छोड़कर स्वर्ग की तरह सब प्रकार के सुखों को भोगते हुए अपना जीवन रसदार बनाकर जी सकती हैं, मेरा खुद का ऐसा अनुभव है।

प्रश्न – २३ गुरु, सतगुरु और सन्त में क्या अन्तर है ?

उत्तर - गुरु, ज्ञान देने वाले को कहते हैं। यह शिक्षा – गुरु कोई भी हो सकता है। सतगुरु अध्यात्म का ज्ञान देने वाले को कहते हैं। जो देह, मन, शब्द व प्रकाश स्वरुप आत्मा के परे होकर इन पर विजय पा लेता है और सत् का अनुभव रखता है, वह सतगुरु है। वास्तव में गुरु नाम ज्ञान का है और सतगुरु नाम अध्यात्म ज्ञान के अनुभवी का है। साधन – अभ्यास में जो गुरु का रुप प्रकट होता है, उसको गुरु स्वरुप कहते हैं। गुरु और सतगुरु में अन्तर है जिसको तुम गुरु कहते हो, वह तुम्हारे मन का रुप है और जिसको तुम सतगुरु कहते हो वह तुम्हारी सुरत का रुप है। अर्थात तुम्हारा मन गुरु रुप है और तुम्हारी सुरत सतगुरु का रुप है। सन्त सम स्थिति में रहने वाले महापुरुष को कहते है। यह चाहे तो अध्यात्म की शिक्षा दे सकता है और न चाहे तो उसकी मर्जी है। यह अधिक समय समस्थिति के अनुभव में रहता है।

प्रश्न – २४ गुरु पुजा क्या है ?

उत्तर – पूजा का अर्थ है किसी देवी-देवता व गुरु के प्रति श्रद्धा – भाव रखकर उसके सामने नतमस्तक होना व जिस किसी वस्तु का अभाव हो उसकी चाह, इच्छा व मांग करना। जिसकी जहां श्रद्धा होती है वह भक्त उसी अपने इष्ट के सामने प्रार्थना करता है।

कहते है कि ऋषि – मुनियों से मनुष्यों ने प्रार्थना की कि हम इस संसार में बहुत दुखी हैं। उन्होंने मनुष्यों को उनके दुख दूर करने के लिए कुछ देवता बताए कि शक्ति चाहिए तो देवी की पूजा करो, धन चाहिए तो लक्ष्मी की पूजा करो, विद्या चाहिए तो सरस्वती की पूजा करो, परन्तु मनुष्य को इनके अतिरिक्त और भी वस्तुएं चाहिए। तब ऋषियों ने कहा कि आप किसी जीवित अनुभवी महापुरुष को गुरु मानकर, जिस वस्तु की भी चाह हो, सुबह शाम आरती बिनती करके उससे मांगो। आप जो भी चाहोगे, गुरु जी सब कुछ देगें। किसी भी देवी – देवता के बीच कोई पंचायत नहीं है। भगवान् तो किसी ने देखा नहीं है। बस गुरु जी को ही भगवान् का रुप मान लो। देवी – देवता, ऋषि – मुनि, अवतार, पीर, पैगम्बर सब भगवान् के सामने हाथ बांधे खड़े रहते हैं। अतः आप सबको छोड़कर गुरु को ईश्वर का स्वरुप मानकर उसी से सब कुछ मांगो। जैसे कहा है कि:

''गुरुर्ब्रहमा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवोमहश्वरः।

गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अत: गुरु के घर किसी चीज की कमी नहीं है। उसके पास भण्डार भरे पड़े हैं। इसके पश्चात् गुरु भक्तों ने साल में एक दिन गुरु की पूजा का दिन निश्चित कर लिया। इस दिन सभी गुरु भक्त सामूहिक रुप से इकट्ठे होकर यह पर्व मनाते हैं। परन्तु जिनको अभी तक ऋषि – मुनियों के आदेश पर विश्वास नहीं है, वे सभी देवी – देवताओं के चक्कर में घूम रहे हैं। फल तो मनुष्य को मिलता है अपने विश्वास का, परन्तु वे अभी तक भ्रम में है कि देवी – देवता उनकी रक्षा करते हैं। इसलिए कहा है कि

''गुरु मिले तो भ्रम नसाहिं।''

प्रश्न – २५ गुरु की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर – इस संसार में जन्म लेने के बाद जैसे – जैसे जीव बड़ा होता है, उसे गुरु की आवश्यकता पड़ती है। वास्तव में लोगों ने गुरु के सही अर्थ को समझा ही नहीं है। गुरु नाम है - ज्ञान, समझ, विवेक व अनुभूति का। इस संसार में जीव का पहला गुरु उसकी माता है वह बच्चों का पालन – पोषण कर संस्कार देकर उसे जीना सिखाती है। इसके बाद विद्या – प्राप्ति के लिए शिक्षा गुरु का सहारा लेना पड़ता है। और फिर इस जीवन को सुन्दर बनाने के लिए तथा ज्ञान व समझ पाने के लिए बाहरी गुरु की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। अब आप खुद ही सोचें कि जब हम दुनिया का छोटे से छोटा काम भी दूसरों से सीखते हैं तो यह इतना बड़ा तत्व ज्ञान भला गुरु के बिना कैसे सम्भव है ? गुरु न केवल परलोक का रास्ता बताता है अपितु इस जीवन को जीने का ढंग भी सिखाता है। कुछ लोग पुस्तकों को पढकर इस ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हैं जो सम्भव नहीं है क्योंकि पुस्तकों में राजे खुदा नहीं है। इसके लिए आपकी पूर्ण विवेकी, अनुभवी , वक्त

गुरु का ही सहारा लेना पड़ेगा और उस पर विश्वास रखकर उसे पूर्ण मालिक का स्वरुप मानना पड़ेगा। फिर वही आपको भगवान का दर्शन आपके अन्दर ही करा देगा। जैसे कहा है कि :

''घर में घर दिखलाय दे, सो सतगुरु पुरुष सुजान।''

अब भगवान तो किसी ने नहीं देखा है उसे किसी गुरु रुप में मानना पड़ता है जैसे गणित में हम किसी रकम को 'अ' या 'ब' मानकर सवाल हल कर लेते हैं उसी प्रकार किसी वक्त गुरु को पूर्ण मानकर हम उस ईश्वर का अपने अन्दर दर्शन कर सकते हैं। इसलिए शास्त्रों में गुरु की बहुत महिमा है। जैसे कहा गया है :

''गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।

बलिहारी व गुरुदेव की, जिन गोबिन्द दियो बताय।''

''ध्यान मूलं गुरु मूर्ति, पूजा मूलं गुरु पदम् ।

मन्त्र मूलं गुरु वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरू कृपा।।''

इस प्रकार गुरु का सहारा लेकर उसके वचनों पर विश्वास करके ही मनुष्य अपने शारीरिक, मानसिक व आत्मिक जीवन को सुखमय बनाते हुए शान्ति की प्राप्ति कर सकता है। इसलिए कहा गया है

''गुरु खोजो री जग में, दुर्लभ रत्न यही।''

प्रश्न – २६ वक्त गुरु व पूर्ण गुरु क्या है ? और उसकी पहचान क्या है ?

उत्तर – वक्त गुरु का अर्थ है समय का गुरु। हमारे देश में बहुत से गुरु, पीर, पैगम्बर व अवतार हो चुके हैं और आज भी गुरुओं की बहुत भीड़ दिखाई देती है। अब प्रश्न यह है

कि हमें लाभ किससे होगा ? जो महापुरुष पहले हो चुके हैं, वो हमें कोई ज्ञान का लाभ नहीं दे सकते। ज्ञान तो वक्त गुरु ही दे सकता है जो अब शरीर रुप में हाजिर है। जैसे रोगी को आज का डाक्टर ही उसके रोग को पहचान कर दवाई दे सकता है गया हुआ नहीं। अब जिस महापुरुष ने बहुत बड़ा आश्रम बना रखा है और लाखों जिसके शिष्य भी हैं परन्तु यदि उसकी संगत से हमे यह समझ, विवेक, अनुभव व ज्ञान नहीं हो सका तो वह वक्त गुरु नहीं है। बात साफ है कि जिस महापुरुष की संगत से आप परम आनन्द व परम शान्ति के अनुभव तक पंहुच गए हैं वही आपके लिए वक्त गुरु है। जैसे एक आदमी बीमार है और उसका डाक्टर बहुत ही दवाईयों का नाम जानता है और उसकी बीमारी को दूर करने का यत्न करता है। परन्तु जो दवा उसकी बीमारी को दूर कर दे वह दवा उसके लिए सही है। इसी प्रकार जिसके रंग व सत्संग से साधक का ध्यान बन जाए वह महापुरुष उसके लिए वक्त का गुरु है। स्वामी जी ने इसके लिए साफ कहा है:-

''वक्त गुरु बिन काज न सरही।''

इस वक्त गुरु के महापुरुषों ने कई नाम रखे हुए हैं जैसे सन्त, सतगुरु, पूरा गुरु, कामिल गुरु, पंहुचा हुआ गुरु, विवेकी पुरुष, वीतराग, पुरुष इत्यादि। योग की भाषा में इसको पूर्ण काम योगी भी कहा गया है। जिसका अर्थ है – जिसको कोई कामना या इच्छा इस संसार में नहीं रही है, जो अब पूर्णतया शान्तचित्त, बेगम व बेफिक्र है तथा हर प्रकार से गुरु की मौज में खुश है। परन्तु ऐसा गुरु हजारों, लाखों में कोई एक होता है, जिसको हम पहचान नहीं सकते हैं। यूं कहने को तो बहुत से साधु सन्त गुरु हैं परन्तु सच्चे सन्त गुरुओं की संख्या बहुत ही कम है। यदि इनकी संख्या अधिक होती तो संसार में जो आज इतना दुख, कष्ट तकलीफ, बेचैनी देखने में आ रही है, वह दिखाई न देती। इसीलिए सन्तमत

में इस बात पर जोर दिया गया है कि गुरु पुरा होना चाहिए। जैसे राधास्वामी वाणी में कहा है :-

''गुरु तो पूरा खोज रे, तेरे भले की कहूं।''

''गुरु वही जो शब्द स्नेही, शब्द बिन दूसर नहीं सेही।

''शब्द कमावे वह गुरु पूरा, उन चरणन की बन जा धूरा।।''

''घर में घर दिखलाय दे, वह सतगुरु पुरुष सुजान।''

''सांचे गुरु की यह पहचान,

चेला करे वह आप समान।।''(दाता दयाल)

''सतगहै सतगुरु को चीन्है, सतनाम विश्वासा।

''कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा।''

''भाई कोई सतगुरु सन्त कहावे, जो नैनन अलख जगावे।

''डोलत डिगे न बोलत बिसरे, जब उपदेश दृढावे।''

गुरु नानक जी ने फरमाया है कि :

''पूरा सतगुरु खोजिए, पूरी होए जुगत।

हंदिया खेलदिया खांदिया, वीचे होए मुक्त।।''

''जीम्भा एक सत्पुरुष अनेक, सत्पुरुष है पूर्ण विवेक।''

कबीर साहब का शब्द है ***''सन्तो सहज समाधि भी भली''***

अन्तिम कड़ी है : ***शब्द निरन्तर मनुआ राता,***

मलिन वासना त्यागी।

उठत बैठत कबहूं न बिछड़े

ऐसी ताड़ी लागी।।''

चीन के महात्मा लोओत्से के अनुसार सच्चाई बताई या लिखी नहीं जा सकती। जो लिखा जाता है और बताया जाता है, वह सच्चाई नहीं हो सकती है।

इन महापुरुषोंने ध्यान के मार्ग पर चलकर अध्यात्म - ज्ञान को प्राप्त किया था। इस विषय में मेरा अनुभव यह है कि यह एक साधन है और गुरु को यह साधन करते हुए जीवन के हर क्षेत्र का अनुभव होना जरुरी है। केवल कानों में अंगुली देकर शब्द सुनने से समता और शान्ति की अवस्था बनती है जिसका ग्राहक हजारों करोड़ो में कोई एक होता है। परन्तु लोग इस दुनिया के जीवन में अधिक दुखी हैं और उनको सुख शान्ति व सही रास्ता वही गुरु बता सकता है जो गृहस्थी हो। अपनी रोजी – रोटी खुद कमाता हो, किसी पूरे गुरु का शिष्य हो जिससे उसको पूरी समझ, सही विवेक व नाम की अनुभूति हो और उसका वह नियमित साधन करता हो और दूसरे शब्दों मे उसका वह नियमित साधन करता हो और दूसरे शब्दों में उसको ज्ञान हो और संसार से वैराग हो और जिसका सत्संग सुनने के बाद जीव को किसी प्रकार का कोई भ्रम या शंका न रहे तथा जिसके दर्शनों से निश्चाव्यात्मक बुद्धि बन जाए और उसकी भटकन छूट जाए जिससे वह आज उस गुरु के पास कल दूसरे गुरु के पास भटके नहीं।

मुझे ऐसे पूरे गुरु होशियारपुर (पंजाब) वाले पं. फकीर चन्द जी महाराज मिले जिनके सम्पर्क में आते ही मुझे पहले ही दिन कुछ ही मिनटों में इस नाम की अनुभूति हो गई और जिन्दगी में कभी कासेई सवाल पूछने की जरुरत ही नहीं पड़ती। पहले तो

किसी तरह की कोई शंका ही नहीं हुई और यदि हुई हो तो सत्संग में ही हस्ते खेलते जीवन के सब क्षेत्रों के काम करते हुए बन गए। अत: मेरे अनुभव के अनुसार जिसको पूरा गुरु या वक्त गुरु के मिलने की चाह व तीव्र इच्छा है उसको सहि रास्ता दिखाने वाला महापुरुष के रुप में परमात्मा तैयार खड़ा है। कुछ भी यत्न करने की बात नहीं है जरुरत है तो बस सच्ची चाह, तड़फ, लगन व उत्सुकता की फिर तो वह ऐसा हाजिर है क्योंकि:-

''जिथे चाह उथे राह।''

''जहां मांग, वहीं पूर्ति''

"Where there is demand] there is supply" इसलिए जिस महापुरुष पर आपका विश्वास बने उसे पूर्ण मान लो। क्योंकि पूर्ण भक्त या विश्वासी है, न कि गुरु। कबीर पूर्ण थे जिन्होनें रामानन्द जी को पूर्ण माना। राधास्वामी वाणी में कहा है:-

''शिष्य नवे जो गुरु को, यह जाने सब कोय।

गुरु नवे जो शिष्य को, विरला जाने कोय।।''

अर्थात वह गुरु पूर्ण है जो शिष्य को नवता है क्योंकि उसने रहस्य जान लिया है कि जिस बात की मेरे में कमी थी, समझ नहीं थी वह शिष्य के अनुभव से ज्ञात हुई है। परमात्मा अंश रुप में हर मनुष्य के अन्दर सुरत रुप में साक्षी भाव से बैठा हुआ है।

प्रश्न -२७ वक्त गुरु एक ही होता है या अनेक ?

उत्तर - जैसे एक ही ही समय में अनेक वैद्य, डाक्टर, इंजीनियर, कलाकार आदि होते हैं वैसे ही एक ही समय में संज, सतगुरु या वक्त गुरु भी अनेक हो सकते हैं। क्योंकि एक ही महापुरुष पूरी दुनिया को यह समझ, विवेक व अनुभूति का ज्ञान नहीं दे सकता वैसे

आज सभी अपने को पूर्ण और वक्त गुरु समझते हैं। परन्तु यह उनकी अपनी समझ है। वास्तव में सतगुरु उस पवित्र विभूति का नाम है जो मनुष्य के मन से गुरुपने का बहम मिटा दे और उसे यह निश्चय करवा दे कि असली गुरु तुम्हारे अन्दर है। क्योंकि इन्सान खुद ही पूर्ण है परन्तु उसे इस पूर्णता के संस्कार बाहर का समय का अनुभवी महापुरुष ही देता है। अत: बिना बाहरी गुरु के यह रहस्य नहीं खुलता। जैसे कहा है: ***''बिना गुरु दाते कोई ना पावे, लख कोई जे करम कमावे ''- नानक देव।*** अब यदि एक ही महापुरुष से यह ज्ञान मिल जाए तो इंसान को दूसरी जगह भटकने की आवश्यकता नहीं है। हां यदि उसकी वहां पर सन्तुष्टि न हो तो दूसरे महापुरुष के पास जाने में कोई हर्ज नहीं है जैसे कोई विद्यार्थी गणित समझना चाहता है यदि एक ही अध्यापक से गणित समझ गया तो ठीक है नहीं तो वह दूसरे, तीसरे अध्यापक के पास जा सकता है। मुझे अध्यात्म के लिए महाराज प.फकीर चन्द जी के सिवाय किसी अन्य का सत्संग सुनने की आवश्यकता नहीं हुई मुझे समझ, विवेक, अनुभूति और ज्ञान सबकुछ उनकी कृपा से मिल गया था।

प्रश्न - २८ सत्संग एक ही गुरु का सुनना चाहिए या अनेक का ?

उत्तर - यदि संभव हो तो एक ही गुरु काफी है। ऐसा मेरा अनुभव है क्योंकि मुझे किसी दूसरे गुरु का सत्संग सुनने का मौका ही नहीं मिला और न ही यह इच्छा हुई कि किसी अन्य का सत्संग सुनूं। जिस अनुभूति के लिए गुरुओं का सत्संग तथा सेवा की जाती है वह ज्ञान पहले ही दिन १५ या २० मिनट में अनुभव में आ गया। परन्तु हर मनुष्य की प्रकृति, संस्कार और हालात अलग-अलग होते हैं। अत: एक ही बात सब पर लागू नहीं होती। यदि किसी एक महापुरुष की संगत से उस पर विश्वास आ जाए, ज्ञान की प्राप्ति

हो जाए व अनुभूति हो जाए तो दूसरी जगह जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु यदि ऐसा नहीं होता है तो दूसरे किसी पूर्ण पुरुष के सत्संग में जाने से कोई हानि नहीं है।

मैंने कई सत्संगियों से यह बात सुनी है कि उनके गुरु जी कहते हैं कि किसी दूसरे महात्मा का सत्संग मत सुनो। यह बात उनके गुरु जी ठीक ही कहते हैं क्योंकि बड़ी कठिनता से चेले हाथ में आते हैं। यदि दूसरे गुरु जी की बात उनको ठीक लगेगी तो चेले वहां चले जाएगें और चेलों की संख्या में कमी हो जाएगी व उनके आश्रम की आमदनी में भी कमी हो जाएगी। इधर चेले भी गुरुओं की परीक्षा लेते घूम रहे हैं। प्यारे सज्जनों राधास्वामी वाणी में कहा है :

''गुरु भी दुर्लभ, चेला भी दुर्लभ।

कहीं योग से मेल मिला।।''

मेरे कहने का भाव यह है कि यदि कोई पूर्ण अनुभवी गुरु मिल जाए तो किसी दूसरे के पास जाने या सत्संग सुनने की बात ही क्या है ? दूसरा, जो वास्तव में गुरु है वह किसी को मना नहीं करता कि मेरा ही सत्संग सुनो दूसरे का नहीं।

प्रश्न - २९ एक गुरु से नाम या दीक्षा लेने का बाद दूसरे गुरु से नाम लेना चाहिए या नहीं ?

उत्तर - जब हमारा एक ही गुरु से काम बन जाता है तो यह प्रश्न ही नहीं उठता कि हम किसी दूसरे के दरबार में जाकर नाक रगड़ें। हां, यदि एक गुरु से यह काम नहीं बने तो किसी पूर्ण गुरु की तलाश जारी रखनी चाहिए। इस भेड़चाल में नहीं आना चाहिए कि हमने गुरु बना रखा है। यदि आपको उससे नाम या दीक्षा लेने के बाद सन्तुष्टि ही न हो तो यह समझो कि वह गुरु ही नहीं है। किसी और काम के लिए वह महापुरुष का वेश

बनाकर डेरा धाम बनाए हुए है। जिस चीज की आप तलाश कर रहे हैं उसका उसे अनुभव ही नहीं है। इसलिए बार-बार कहा जाता है कि समझ बूझ कर गुरु बनाना चाहिए ताकि ऐसी कठिनाई ही ना आए जैसे कहा है कि :

''पाणी पीजिए छानकर।

गुरु कीजिए जानकर।''

प्रश्न - ३० सत्संगी ने किसी गुरु से नाम लिया हुआ है और यदि वह गुरु चेला छोड़ देता है तो ध्यान उसी गुरु का करना चाहिए या उसके स्थान पर विद्यमान नए गुरु का ?

उत्तर - यदि सत्संगी ने किसी गुरु से नाम लिया हुआ है और उसके समय में उसका ध्यान बन जाता है तो उसको ध्यान बदलने की जरुरत नहीं है। परन्तु उसे सेवा और सत्संग हाजिर गुरु का ही करना चाहिए। चदि पहले गुरु जी का ध्यान नहीं बना है तो ध्यान, सेवा और सत्संग हाजिर गुरु का करो। यह गुरु ध्यान मन ठहराने के लिए और इस लोक को सुन्दर बनाने के लिए है। यदि आपका ध्यान बनता है तो जो भी इच्छा करोगे, बहुत जल्दी पूरी होगी। परन्तु घटिया या नकारात्मक इच्छा मत करों क्योंकि जैसा सोचोगे, वही होगा। अतः स्वप्न में भी बुरा नहीं सोचना चाहिए। त्रिकुटि या ॐ के स्थान पर गुरु स्वरुप बहुत जरुरी है आगे फिर प्रकाश व शब्द खुल जाएंगे। परन्तु प्रकाश तो उन्हीं का खुलेगा जिनका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचार्य कायम है। पहली स्थिति में गुरु के स्वरुप में विश्वास रखो और हमेशा उसे सुमिरन रुप में साथ रखो। आगे सब बात गुरु पर छोड़ दो। जैसे कहा है कि :-

''गुरु का ध्यान कर प्यारे, बिना इसके नहीं छुटना।

नाम के रंग में रंग जा, मिले तोहे धाम निज अपना ।।''

प्रश्न - ३१ भक्ति सतगुरु वक्त की करनी चाहिए या पुराने आदि गुरु की ?

उत्तर - भक्ति सतगुरु वक्त की ही करनी चाहिए। जैसे जलते हुए चिराग से ही दूसरा चिराग जलता है उसी प्रकार वक्त गुरु ही मनुष्य के अज्ञान रुपी अन्धकार को दूर कर उसे ज्ञान की रोशनी दे सकता है। वास्तव में गुरु नाम ही ज्ञान, समझ व विवेक का है। जिस प्रकार जब चिराग जलता है तो पतंगे खुद ही उस पर प्राण देने चले आति हैं और जब गुलाब खिलता है तब भौंरे उसके इर्द-गिर्द मंडराने लगते हैं, उसी प्रकार वक्त गुरु जो हमेशा उस राम नाम की धार में मस्त रहता है, उससे हर समय वे धारें निकलती रहती हैं और ज्ञान के इच्छुक व्यक्तियों के लिए लाभदायक सिद्ध होती है। राधास्वामी वाणी में इसके लिए कहा है : - ***''पिछलों की तज टेक, तेरे भले की कहूं।''***

प्रश्न -३२ सतगुरु के दर्शन, प्रसाद व सेवा का क्या लाभ है ?

उत्तर - सतगुरु के दर्शन, प्रसाद व सेवा सत्संगी के आस-विश्वास व भरोसे के अनुसार ही लाभदायक होता है। धर्म केवल विश्वास और अनुभव का विषय है। जैसे भक्त अपने अभीष्ट देवी - देवता के पास अपनी श्रद्धा व विश्वास ो जो इच्छा लेकर जाते हैं, वह उनकी श्रद्धानुसार पूरी हो जाती है। इसी प्रकार जो सतगुरु को पूर्ण मालिक का स्वरुप मानकर उन पर विश्वास रखते हैं तो उनके सब काम हो जाते है और जो असम्भव दिखता है, वह भी सम्भव हो जाता है। परन्तु जिसे विश्वास नहीं है, उसे कोई लाभ नहीं होता है। जैसे चुम्बक लोहे को ही अपनी ओर खिचता है, पत्थर को नहीं। बात आस-

विश्वास व भरोसे की है। बाहर का सतगुरु जीव के हालात देखकर आशावादी विचार और संस्कार देता है। सब खेल यहां संस्कारों का तथा वासना, इच्छा व विश्वास का है।

जो सतगुरु पूर्ण कामयोगी व मुक्त अवस्था में रहता है तो उसके शरीर में वैसी ही धारें निकलती रहती हैं और जो जिज्ञासु विश्वास के साथ उसका दर्शन करता है तो उसे अवश्य लाभ होता है। इसी प्रकार जो महापुरुष गुरुआई करते हैं, अगर वह स्वयं अपनी सुरत को प्रकाश या शब्द में टिकाकर प्रसाद दें, जिसका कि वे संस्कार देना चाहते है तो सत्संगियों को बहुत लाभ पंहुच सकता है।

जहां तक गुरु सेवा की बात है वह यह है कि सेवा का फल अवश्य मिलता है। परन्तु यहां भी वही बात है कि जिस विचार, भाव, लगन और नीयत से जो सेवा करता है, उसको उसका फल मिलता है परन्तु यह जीव की नीयत आस-विश्वास का ही फल होगा। और गुरु सेवा के अर्न्तगत जो तन-तन-धन देने की बात की गई है, उसे लोगों ने ठीक से समझा ही नहीं है। राधास्वामी वाणी में इसे बड़े विस्तार से समझाया गया है। वास्तव में इसका भाव यह है कि जो सतगुरु के प्रवचन सुनकर उसे मन में गुनता है और इस गुनने से जो उसको ज्ञान, अनुभव या समझ आती है उससे उसकी सुरत स्वंय सांसारिक, शारीरिक और मानसिक सम्बन्धों से उपराम हो जाती है। फिर तन-मन-धन का आकर्षण उसके मन में नहीं रहता। सतगुरु यदि समर्थ है तो उसकी वाणी मानवीय सुरत को इन समस्त बन्धनों से निकाल देती है। अतः धन्य है ऐसा पुरुष जिसे किसी ऐसे सच्चे सन्त सतगुरु के दर्शन हों और सेवा का अवसर प्राप्त हो क्योंकि ऐसा महापुरुष अपने वचनों द्वारा जीव को चिता देता है और वह सहज ही जीव-मुक्त अवस्था में आ जाता है। जैसा मेरे साथ हुआ।

प्रश्न -३३ क्या बाहरी गुरु का प्रेम, आशीर्वाद, रेडियेशन कुछ नही करता ?

उत्तर - बाहरी गुरु का प्रेम, आशीर्वाद और रेडियेशन जरुर काम करता है। यह बात आज विज्ञान ने भी साबित की है कि इनका असर होता है। परन्तु यह असर होता उन्ही पर है जिन्हे अपनी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने की सच्ची चाह व तड़प हो, दूसरों पर नही। जितना जिसका प्रेम, तड़प व विश्वास होगा, उतना ही उसका प्रभाव होगा। जैसे मैं अपने सत्संगियों को हमेशा आशावादी विचार व आशीर्वाद दिया करता हूं। अब जो सत्संगी मेरे आशीर्वाद को ग्रहण कर लेता है और मेरी आज्ञा का पालन करता है तो उसका काम तुरन्त हो जाता है और जो ऐसा नही करता उसका काम नही बनता। उदाहरण के तौर पर एक बार मेरे गुरु महाराज पण्डित फकीर चन्द जी कहीं पर पैदल जा रहे थे। रास्ते में उन्हे ठोकर लगी और वे वहीं पर कीचड़ में गिर गए। उन्हे वहां पर एक सस्तंगि ने देख लिया और वो उन्हे अपने घर ले गए। वहां पर उनकी लड़की ने महाराज जी की कमीज को जल्दी धोया और उसे अंगठी के अंगारों पर जल्दी से सुखाकर प्रैस करके दे दिया। यह देखकर महाराज जी बहुत खुश हुए और उन्होने उस लड़की को कुछ मांगने के लिए कहा। लड़की कुछ दिनों से बहुत दुखी थी क्योंकि उसका पति घर से लापता था। उसने महाराज जी से अपने पति के सकुशल घर आने की प्रार्थना की। महाराज जी ने उसके पति की फोटो मंगवाई और उसे तकिये के नीचे रख दिया। उसके बाद महाराज जी ने समाधिस्थ होकर उसकता पता लगाया और लड़की को बताया कि तुम्हारा पति जीवित है और वह इस समय कलकता के अमुक मकान में है और एक महिने तक वापिस आ जायेगा। और ठीक वैसा ही हुआ। अत: गुरु होना बहुत बड़ी बात है। अगर कोई वास्तव में ऐसा गुरु हो जिसे अपनी खुद की कोई गर्ज न हो तो उसका प्रेम,

आशीर्वाद व रेडियेशन बहुत बड़े चमत्कार करता है। इसलिए मनुष्य की भलाई इसी में है कि वो किसी ऐंसे महापुरुष का सत्संग करें और उससे प्रेम करें जो खुद निस्वार्थ(पूर्ण), मुक्त व वैराग की अवस्था में रहता हो। ऐसी स्थिति में उस आदमी के प्रेम और विश्वास का ख्याल और सत्संग कराने वाले का क्रियात्मक जीवन दोनो मिलकर सत्संगी की अवस्था को बदल देंगे। भाव यह है कि सच्चे सन्त या फकीर की सहानुभूति प्राप्त हो।

प्रश्न - ३४ कुछ सत्संगी जो केन्द्रो में हमेशा गुरु के निकट रहते है फिर भी वे कोरे रहते है। उन पर गुरु की रेडियेशन का प्रभाव क्यों नही पड़ता ?

उत्तर - ऐसे सत्संगी किसी और आत के विचार से गुरुजी के आश्रमों में रहते है। वे स्वार्थवश किसी सांसरिक इच्छा को पूरा करने के लिए गुरु के इर्उ गिर्द घूमते रहते है और दरबार की शोभा बने रहते है। इनके अन्दर परमार्थ की चाह नहीं होती, इसलिए ये कोरे के कोरे बने रहते है।

दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि सत्संग करवाने वाले महापुरुष पूर्णतया निस्वार्थ नही होते। अत: उन्हे सांसरिक कार्यो की सफलता के लिए ऐसे पुरुषों की आवश्यकता रहती है फिर लाभी हो तो कैसे ? वास्तव में सच्चे सन्त सतगुरु का स्वरुप निस्वार्थ व लापरवाह होता है और वही इस काम को पूरा कर सकता है। दूसरे लोग केवल स्वाग या वेष बनाकर अपना उल्लू सीधा करते है। रहस्य ज्ञाता सतगुरु इन्सान की प्रकृति को देखकर ऐसा उपाय बताता है जिसको अपनाने से इन्सान की इच्छा या तो पूरी हो जाती है या भोग भोगने के बाद उससे छुटकारा मिल जाता है। इसलिए गुरु आज्ञा ही मुख्य चीज है।

प्रश्न - ३५ क्या अपनी इच्छा से जबरदस्ती लिया हुआ आशीर्वाद काम करता है ?

उत्तर - जो जबरदस्ती लिया जाता है, वह आशीर्वाद कैसे हुआ ? आशीर्वाद तो वह होता है जो देने वाला खुश होकर दे और लेने वाला श्रद्धाभाव व विश्वास से ले। यह आस विश्वास और श्रद्धाभाव का विषय है। लेने देने वाले जिस भाव और नियत से लेते देते हैं, यह उसका फल होता है। आप खुद ही विचार करें कि जब कोई जबरदस्ती तंग करके या जिद्द करके आशीर्वाद लेता है तब देने वाले के मन से आशीर्वाद निकलेगा या दुराशिष ? परन्तु यहां एक बार मेरे अनुभव में है कि यदि आपने उसको आशीर्वाद मान लिया है और आपको पूर्ण विश्वास है तो काम आपके विश्वास के अनुसार हो जायेगा, क्योंकि काम आपके विश्वास ने करना है । अर्थात् आशीर्वाद देने वाला महात्मा कठोर शब्द कहे और कोई उसे आशीर्वाद मान ले तो उसके विश्वास से वह काम हो जायेगा। परन्तु ऐसा मनुष्य मीरा जैसा हजारो, लाखों में कोई एक होता है।

प्रश्न - ३६ गुरु के प्रति किया गया प्रेम यदि प्रेमिका जैसा है तो क्या वह उचित है ? कृपया इसे स्पष्ट करें।

उत्तर - अच्छा तो यह होता कि यह प्रश्न पूछने वाले बेटी यहां मेरे सामने होती। आप उसको ठीक समझा नही सकोगी। खैर मैं इसका उत्त्र लिखता हूं। शायद किसी और का भी ऐसा प्रश्न हो। जहां तक प्रेम की बात है वह तो एक ही है परन्तु दर्जे के अनुसार भाव बदल जाते है।

बात गुरु के प्रति प्रेम की है सो बहुत से सन्तों ने परमात्मा को माता - पिता माना है। यानी जैसा सम्बन्ध जिसको प्यारा लगा वही मानकर उसने उससे प्यार किया, जिससे उनकी सूरत ऊपर चढ़ गई और वे समाधि तक पंहुच गए। जैसे मीरा कहती है -

नयनों अन्दर आय तू, नयन भाफ तोहे लू।

न मैं देखूं और को, न तोहे देखन दूं।।

कबीर साहब ने ऐसा कहा है -

''हरि मोरा पीव, हम हरि की बहुरिया''

बात सच्चे प्रेम की है। जैसा राधास्वामी ग्रन्थ के एक सब्द में आया है-

''दर्शन करे वचन पुनि, सुने, सुन-सुन कर नित मन में गुने''

इसी शब्द में आगे चलकर कहा है-

''गुरु का रुप लगे अस प्यारा, कामिनी पति मीन जलधारा ।

सत्संग करना ऐसा चाहिए, सत्संग का फल यही सही है।।''

''गुरु पर डालूं तन मन वार।

गुरु पर जाऊं मैं बलिहार।।''

वैसे माता पिता का बच्चों के प्रति या छोटों के प्रति जो प्यार होता है, उसे स्नेह या वात्सल्य प्रेम कहते है। और बच्चों को बड़ों के प्रति जो प्रेम होता है, वह श्रद्धा कहलाता है। बराबर वालों के प्रति जो प्यार होता है, वह प्रेम कहलाता है। पति-पत्नी का प्रेम दाम्पत्य प्रेम होता है जिसमें स्नेह, श्रद्धा, प्रेम सब मिले होते है। प्रेम वही है जो परमात्मा के प्रति होता है। उर्दू में इसको ***'ईश्के मिजाजी'*** और ***'ईश्के हकीकी'*** कहा

है। यानी इसे दो भागों में बांटा है। ईश्के मिजाजी वह है जो भगवान् के बनाए मनुष्य जैसे माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, बेटे-बेटियां तथा सभी जीव-जन्तु इत्यादि से प्रेम किया जाता है। तान्त्रिकों ने इसमें फूल-पौधों के प्रति प्रेम को भी अपनी अनुभव के लिए शामिल किया है। तो ईश्के मिजाजी परमात्मा की बनाई हुई वस्तुओं से प्रेम करता है और फिर ईश्के हकीकी परमात्मा- तत्व से प्रेम करना है । जो पहले ईश्के मिजाजी नही करता, वह ईश्के हकीकी क्या करेगा ? परमात्मा को तो किसी ने देखा नही है परन्तु उसकी बनाई हुई दुनिया हमारे सामने है। अत: पहले हम इन्सान से प्यार करे, पति-पत्नी, मां-बाप, भाई-बहन इत्यादि से तब फिर गुरु के प्रति प्रेम है। उसको परमात्मा का स्वरुप मानकर उससे प्रेम करें, उसके सत्संग सुने और उस पर अमल करें। फिर धीरे-२ हमें परमात्मा तत्व समझ में आता जायेगा और हम बाहरमुखी हो जायेंगे। वास्तव में प्रेम ही एक ऐसी चीज है जो आसानी से अन्तरमुखी होने में सहायक होता है और प्रेम के जज्बा को उभारने के लिए विश्वास का होना जरुरी है। इसलिए पूर्ण गुरु का प्रेम इन्सान को सत्य के रहस्य से जल्दी ही अवगत करा देता है। अत: पहले दर्जे में आप गुरु को परमात्मा मान कर प्रेम करो, फिर यह प्रेम अपने आप ऊंचे दर्जे तक पंहुच जायेगा और जब ध्यान बन जायेगा तब आप काम - क्रोध से ऊपर उठ जायेंगे और जब बात स्पष्ट है कि जो गुरु पूर्ण अनुभवी व विवेकी है, वह आपका मार्ग दर्शन करेगा और यह प्रेम जो आप उससे जिस भाव से कर रही हो, इसको ईश्के हकीकी में बदल देगा। परमात्मा आप में और गुरु में दोनो में बैठा है। वह आपको हर तरह से सही मार्ग पर लगा देगा। वास्तव में यह मार्ग ध्यान और प्रेम का ही है। आप गुरु को परमात्मा मान कर प्रेम करो और ऊंचे विचार रखो। मन, वचन व कर्म से शुद्ध रहो, आपका कल्याण होगा।

प्रश्न - ३७ क्या गुरु अन्तर्यामी होता है ?

उत्तर - हां एक दृष्टि से होता है। जो वास्तव में पूर्ण अनुभवी व विवेकी महापुरुष है। वह अधिक समय समस्थिति की अवस्था में रहता है। जहां संकल्प - विकल्प नही रहते। यानी वह जब भी सत्संग कराता है, कोई बात सोचकर या पढ़कर नही बोलता उसकी सुरत अपने अन्दर नाम के साथ लगी रहती है। अब जो मनुष्य सत्संग में बैठे है और किसी तरह की इच्छा या जिज्ञासा उनके मन में होती है या जो आदमी अपने मन में कुछ विचार लेकर उस महापुरुष के दर्शन करने जाता है तो वह विचार की धार उस महापुरुष के मन, आत्मा या सुरत पर जाकर पड़ती है और उसके मुंह सेच उसके सामने वाले मनुष्य के सवाल या विचार का उत्तर सहज में ही निकलता रहता है। इस ज्ञान को विचारों की फिलोस्फी या (Philosophy of thought) कहते हैं। परन्तु उस महात्मा को इस बात का पता नही होता कि कौन क्या इच्छा लेकर आया है ? अब आप ऐसे महापुरुष को अन्तर्यामी या जानीजान कह सकते हो।

इस बात का मेरा अनुभव १९६२ से है। लोग मेरा सत्संग सुनते है और कहते है कि आपने जो बात मेरे मन में थी या जो इच्छा व प्रश्न मैं लेकर आया हूँ वही बिना पूछे आपने बता दी है। आप तो अन्तर्यामी है, परन्तु मेरे को कुछ मालूम नही कि कौन मनुष्य क्या इच्छा या प्रश्न मन में लेकर आता है ? यह बात सहज ही विकिरणधारा यानी रेडियेशन के नियमानुसार होती है। अत: यह बात समझने वाली है कि जो यह कहता है ''मैं दूसरों के मन की बात जानता हूं'', वह आध्यात्मिक नही हो सकता । आध्यात्मिक महापुरुष अधिक समय संकल्प-विकल्प से ऊपर रहता है।

और साधन अभ्यारस के अन्दर जो गुरु का स्वरुप प्रकट होकर सत्संगी की मदद करता है वह उसका अपना आपा या मन ही होता है। हां संस्कार या विचार उसे बाहरी गुरु देता है। मेरे पास बहुत से ऐसे विश्वासी शिष्य आते है जिनके अन्दर मेरा स्वरुप प्रकट होकर उनकी जरुरत के अनुसार मदद कर देता है ओर मुझे इसका कोई ज्ञान नहीं होता है। अतः इन्सान को जो कुछ मिलता है वह उसके श्रद्धा और विश्वास का ही फल होता है।

प्रश्न -३८ नाम क्यश है और इसकी प्राप्ति कैसे होती है।

उत्तर - मनुष्य के समस्त आन्तरिक व बाहरी दुख, संकट व चिन्ताओं के दूर करने का एकमात्र उपाय ही 'नाम' कहलाता है और यह नाम का काम पूर्ण अनुभवी महापुरुष का है। जो आदमी अशान्त होते है, उनकी शान्ति के लिए ही यह नाम है। अब इस अशान्ति के भिन्न-भिन्न कारण होते है। जो आदमी जिस कारण से अशान्त या दुखी है तो अनुभवी पुरुष उस कारण को जानकर उसकी प्रकृति के अनुसार तरीका या ढ़ंग अपनी जुबान या वचन से बताता है और उस आदमी को शान्ति मिल जाती है। जैसे किसी को धन का अभाव होता है तो अनुभवी पुरुष उसको काम करने का ढ़ंग बताता है और अपनी हस्ती के अनुसार खर्चा करना बताता है। किसी का मन का चंचल होता है तो उसका कारण जानकर उसको स्वस्थ बनलाने का ढ़ंग बताता है। किसी को सही समझ या विवेक न होने से अशान्ति होती है तो उसको अपने सत्संग मे समझ, विवेक देता है किसी का साधन-अभ्यास न बनता हो तो उसके कारण को जानकर सही ढ़ंग बताता है या वह कारण समझा देता है जिससे उस का साधन बन जाए। तो यह नाम गुरु के अधीन है।

अब आजकल लोग सांसारिक दुखों से घिरे हुए अपनी दुनियावी सफलता के लिए गुरुओं की शरण मे जाते है और नाम ले लेते है और उन्हें यह होश ही नही होता कि नाम क्या चीज है ? और वे सुबह - शाम कानों मे अंगुली डाल कर बैठते भी हैं परन्तु होते अशान्त ही है। इधर गुरु महाराज जो भी कृपा करके उनको वर्णात्मक नाम सहारे के लिए दे देते हैं, यह वास्तव में नाम नहीं है अपितु एक भेड़ चाल है। परन्तु जहां तक मैं समझता हूं यह भी गलत नहीं है। या एक संस्कार है जो जींव ले लेता है परन्तु नाम देने वाले की नीयत या रेडियनश इसके साथ जायेगी। यदि नाम देने वाले की नीयम या विचार यह है कि मेरे बहुत से चेले बल जाए ओर बहुत बड़ा आश्रम बन जाए और चेलो से खूब धन मिले तो राधास्वामी वाणी के अनुसार ऐसा का है-

''लोभी गुरु लालची चेला।

दोनों नरक कुण्ड में खेला।।''

तो ऐसी स्थिति में गुरु और शिष्य दोनों ही जिस भाव या विचार से नाम देते या लेते है, वही संस्कार फले-फूलेंगे। वास्तविक ज्ञान से वे दूर रहेंगे। इसलिए उस परम आनन्द व परम शान्ति वाले 'नाम' को पकड़ने का एक ही तरीका नहीं हो सकता, जैसा कि आजकल हम देख रहे हैं क्योंकि मनुष्य की प्रकृति व संस्कार भिन्न – २ है। जैसे रोग को जानकर उसके अनुसार दवाई देना योग्य डाक्टर का काम है, उसी प्रकार मनुष्य की प्रकृति देखकर, उसके दुख को दूर करने का उपाय बताकर उसे सही रास्ते पर लाना पूरे और अनुभवी सतगुरु का काम है। इसका नाक ही अध्यात्म में नाम – दान है। वैसे मेरे साथ नाम की अनुभूति की घटना ऐसे घटी जो शायद ही लोगो के साथ घटती है।

इसीलिए मेरी बात पर किसी को विश्वास नही आता कि ऐसा भी कभी हो सकता है। वैसे गुरु ग्रन्थ साहिब में नानक देव जी ने लिखा है –

''नानक नदरी निहाल''

अर्थात सच्चे मन से किसी पूर्ण अनुभवी पुरुष का दर्शन करते ही मनुष्य निहाल हो जाता है। यानी वह वस्तु जिसकी उसे चाह हो मिल जाती है।

मुझे उस शान्ति व परम आनन्द वाले नाम की लगन थी और केवल १५ या २० मिनट मैंने अपने गुरु महाराज पंडित फकीरचन्द जी के दर्शन करे, वचन सुने और उसी ही समय वह नाम मेरे अन्दर गूंज गया और अब तक खाते – पीते, बोलते तथा जीवन के सब खेल खेलते हुए उस नाम से जुड़ा रहता हूं यानी हर समय उसकी अनुभूति बनी रहती है। जैसे –

''सहज ही धुन होत है, हरदम घट के माही।

सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाही।।''

इसलिए ही मैने किसी को नाम नही दिया है। मेरा सत्संग ही नाम दान है। सच्चे मन से जो मेरे सत्संग में इच्छा लेकर विश्वास से मेरी बात सुनता है, उस पर अमल करता है, उसका काम बन जाता है।

प्रश्न – ३९ नाम का अधिकारी कौन है ?

उत्तर – इस नाम के अधिकारी विशेष – २ होते है। परन्तु समय के महापुरुष के सत्संग में जो भी कोई इच्छा लेकर जाता है उसकी इच्छा पूरी होती है और उसका संसार सुन्दर बन जाता है। शर्त यह है कि वह सतगुरु के दर्शन श्रद्धा भाव से करें, उसका वचन पूरे

ध्यान से सुनें तथा उस पर अमल करें। इस नाम के अधिकारी शिष्य की पहचान राधास्वामी वाणी में इस प्रकार बताई है-

''विषयन से जो होए उदास, परमार्थ की जा मन आसा।

धन सन्तान प्रीति नही जाके, जगत पदार्थ चाह लही ताके।।''

''तन इन्द्री आसक्त न होई, नींद भूख आलस जिन खोई

विरह बाण जिन हिरदे लागा, खोजत फिरे साध गुरु जागा।।''

अर्थात् जिसके मन में सच्चे ज्ञान को प्राप्त करने की चाह या तड़प होती है तो उसका मन सांसरिक पदार्थों से विरक्त हो जाता है और वह केवल सच्चे गुरु व ज्ञान की तलाश में भटकता रहता है और जब उसे ऐसा कोई सन्तुष्ट करने वाला पूर्ण अनुभवी गुरु मिल जाता है तो वह उसे मालिक का साक्षात् स्वरुप मानकर उसके लिए अपना तन-मन-धन सब कुछ न्यौछावर कर देता है। अतः यदि कोई इस प्रकार का नाम का अधिकारी हो और वक्त गुरु या वीतराग पुरुष या 'पूर्णकामयोगी' जो इस समय मानव शरीर में हो, उसके पास अपने को खाली करके, ना की चाह या पूर्ण इच्छा लेकर श्रद्धा, विश्वास, प्रेम से उसका दर्शन करे और वचन सुने तो कोई देर लगने वाली बात नही है।

इस नाम को बिना समझे और बिना सत्संग के यह नाम दुख का कारण बन जाता है। जैसे पूज्य मानव दयाल जी महाराज की विश्वासी बिलारी की एक औरत तीन चार साल पहले मुझे मिली उसका प्रकाश खुला हुआ था और घर की सब तरह की जिम्मेदारी उस पर थी। उसको सत्संग ठीक से नही मिला इसलिए नाम की समझ न होने से वह उस प्रकाश के कारण बहुत बेचैन थी। इसी प्रकार कुछ दिन पहले राजस्थान के एक सज्जन की पत्नी मुझे मिली जो इसी प्रकार बेचैन है इसको सांसारिक वस्तुओं की

इच्छा थी परन्तु बिना किसी कारण के मेरी रेडियेशन या संगत के प्रभाव से नाम उसकी खोपड़ी में गूंजने लग गया। इसके लिए वह तैयार नही थी। अत: उस नाम से वह बहुत बेचैन है। सत्संग सुना नही और समझ – विवेक उसे कुछ है नही। उसके लिए नाम वैसा ही है जैसे कुते को कोई नारियल मिल जाए। और भी ऐसे कई अनुभव मुझे है। अत: बात समझ कर साधन भी उसकी देख रेख में किया जाए तो नाम अमृत है, नही तो उससे जीवन दु:खी हो जाता है। यह हजारों आदमियों का नाम देने का फल है। संस्कार देना तो अच्छा है परन्तु नाम बहुत बड़ी वस्तु है। इसी से मनुष्य को परम आनन्द व परम शान्ति की प्राप्ति होती है। इसलिए मनुष्य की प्रकृति, संस्कार, अधिकार व लगन को देखकर ही समय के अनुसार वक्त गुरु या पूर्ण अनुभवी विवेकी पुरुष उसे नाम देता है क्योंकि इस विषय में वह बेहतर जानता है।

प्रश्न – ४० क्या गुरु से बिना दीक्षा लिए बिना मन्त्र के समझे उच्चारण करने से कोई लाभ होता है ?

उत्तर – बिना समझे और बिना विश्वास के मन्त्र के उच्चारण से कोई लाभ नही होता है। जैसे राम ने नवधा भक्ति में कहा है –

''मन्त्र जाप मम दृढ विश्वासा।

पंचम भजन सो वेदे प्रकाशा।।''

यानी मन्त्र देने वाले का भाव और मन्त्र को सुनकर उसका उच्चारण करने वाले को यह विश्वास हो जाए कि इस मन्त्र से मुझे यह लाभ होगा। अर्थात् मन्त्र में कोई दम नही है, दम है तो मन्त्र के उच्चारण करने वाले के विश्वास में। दूसरी बात मन्त्र देने वाले ने यदि

उस मन्त्र की कमाई करके सिद्वि प्राप्त की है तो जब वह सज्जन किसी दूसरे को वह मन्त्र बतायेगा तब उसकी रेडियेशन का प्रभाव उस मन्त्र का उच्चारण करने वाले पर अवश्य होगा और उसका विश्वास बन जायेगा कि इस मन्त्र का उच्चारण करने से मुझे यह लाभ होगा। अत: किसी मन्त्र के उच्चारण में मन्त्र देने वाले का भाव और लेने वाले का विश्वास दोनो काम करते है।

प्रश्न – ४१ अध्यात्म उन्नति में मौन व्रत का क्या महत्व है ?

उत्तर – वास्तव में अध्यात्म ज्ञान की अनुभूति मौन में ही होती है। साधक जब आत्म ज्ञान की अनुभूति करते है तब वह मौन अवस्था में ही प्राप्ति होती है। मनुष्य जब बोलता है तो उसकी शक्ति खर्च होती रहती है। जो महात्मा गुरुवाई करते है उनको जरुरत से ज्यादा बोलना पड़ता है। अत: अपने साधन भी अधिक कीलर जरुरी है। योग साधन का अर्थ ही यह है कि मन को वश में रखना समस्थिति में रहना। वास्तव में से तील इन्द्रियां साधक को समता में नही रहने देती – आंख, कान और जुबान। जुबान को वश में रखने की आसान विधि है – मौन व्रत। इसका समय अपनी सुविधा के अनुसार हो सकता है – घण्टा, दिन, सप्ताह या महीना इत्यादि कुछ समय निमयम जरुरी है फिर सब सहज हो जाता है।

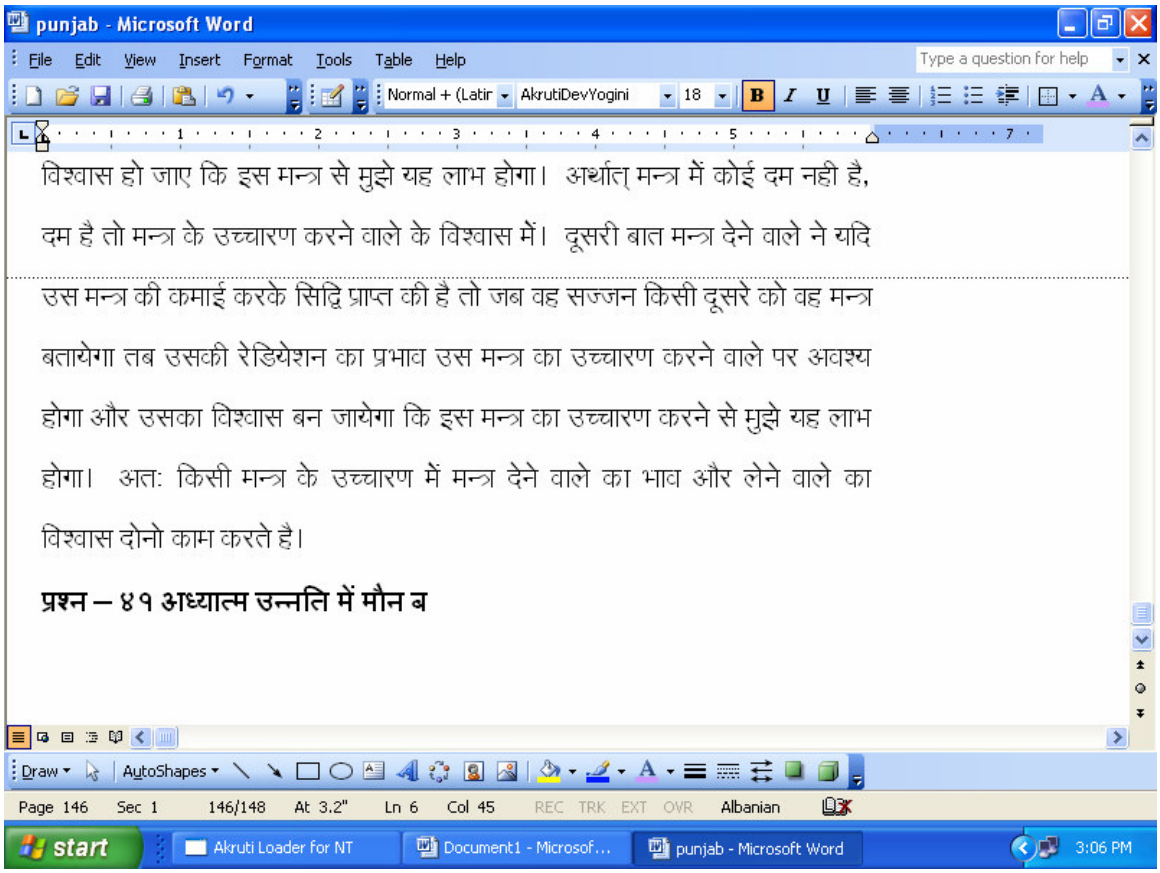
punjab - Microsoft Word
File Edit View Insert Format Tools Table Help
Type a question for help
Normal + (Latir
AkrutiDevYogini
18
विश्वास हो जाए कि इस मन्त्र से मुझे यह लाभ होगा। अर्थात् मन्त्र में कोई दम नही है,
दम है तो मन्त्र के उच्चारण करने वाले के विश्वास में। दूसरी बात मन्त्र देने वाले ने यदि
उस मन्त्र की कमाई करके सिद्धि प्राप्त की है तो जब वह सज्जन किसी दूसरे को वह मन्त्र
बतायेगा तब उसकी रेडियेशन का प्रभाव उस मन्त्र का उच्चारण करने वाले पर अवश्य
होगा और उसका विश्वास बन जायेगा कि इस मन्त्र का उच्चारण करने से मुझे यह लाभ
होगा। अत: किसी मन्त्र के उच्चारण में मन्त्र देने वाले का भाव और लेने वाले का
विश्वास दोनो काम करते है।
प्रश्न – ४१ अध्यात्म उन्नति में मौन ब
Draw
AutoShapes
Page 146 Sec 1 146/148 At 3.2" Ln 6 Col 45 REC TRK EXT OVR Albanian
start
Akruti Loader for NT
Document1 - Microsof...
punjab - Microsoft Word
3:06 PM

प्रश्न - ४२ सतगुरु के बार - २ बताए जाने पर भी जीव की निश्चयात्मक बुद्धि क्यों नही बनती ?

उत्तर - इसके कई कारण हैं। एक तो जीव का मन महाचचंल है अतः सतगुरु का सत्संग वह समझता नहीं है। जब सतगुरु सत्संग देता है सत्संगी का मन चचंल होने के कारण एकाग्र नही होता जिस से वह उस बात को ठीक समझता नही है। दूसरा, सत्संगी ने नाम भी ले लिया और वह सत्संग में भी आता है परन्तु उसको सतगुरु पर विश्वास नही है इसलिए उसका मन ठहरता नही है। तीसरा, कुछ सत्संगियों को छोड़कर अधिक संख्या में सत्संगियों का शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य गिरा हुआ होता है। इसलिए उनको सुमिरन ध्यान बताया जाता है और मानसिक व शारीरिक ब्रह्मचर्य के विषय में समझ आती है और ज्ञान हो जाता है तब वह अपने आप को सम्भालता है और सुमिरन ध्यान रू मन कुछ - २ सतगुरु के सत्संग को समझने लगता है। यह बात मनुष्य की भिन्न - २ प्रकृति, अधिकार और संस्कार पर निर्भर करती है। सबके लिए एक ही बात नही है। अतः सत्संगी की निश्चयात्मक बुद्धि तो शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य कायम होने पर और सत्संग मे जाए लाभ होने वाले बात नही है। भेड़ चाल है जो सत्संगों में देख ही रहे है। जैसे कहा है -

''गुरु चेला व्यवहार जगत में झूठा बरत रहा।

का से कहूं समझ नही काहू धोखे धार बहा।।''

''गुरु तो मान प्रतिष्ठा चाहे, चेला स्वार्थ संग बन्धा।

सच्चा मार्ग सुरत शब्द का, सो अब गुप्त बहा।।''

कहने का भाव यह है कि आज का मनुष्य शरीर और मन का रोगी है। जहां आत्मा परमात्मा की बात है, बहुत ही कम मनुष्य है यानी हजारों में कोई एक जिसको अध्यात्म ज्ञान या आत्मा-परमात्मा को जानने की चाह हो। बाकी दो बड़े समूह है। एक शरीर के रोगियों का जिनकी भीड़ डाक्टरों के पास दिखाई दे रही है, दूसरा मन के रोगियों का जिनकी भीड़ महात्माओं के आश्रमों में है। अब न तो शरीर के रोगी को अपने डाक्टर व उसकी दवा पर विश्वास है और न मन के रोगी को अपने गुरु जी या एसके द्वारा दिए गए मन्त्र या नाम में विश्वास है। जहां तक मेरा अनुभव है डाक्टर व उसकी दवा में शक्ति नहीं है अपितु रोगी को स्वस्थ करने वाली शक्ति उसके अन्दर उसके विश्वास व निश्चयात्मकता में है। यानी "Healing power is withinself" यही बात गुरु के शिष्यों की है जो तरह-२ के भ्रम, शंकाओ व घटिया विचारों से भरे हुए है। यानी उनका मन "Negative thoughts" या नकारात्मक विचारों से भरा रहता है। सिद्वि-शक्ति मनुष्य के मन में है और उसे बाहर देवी-देवता, पीर-पैगम्बरों में तलाश करता फिरता है। जो महापुरुष मन, वचन, कर्म से शुद्ध है और पूर्ण अनुभवी है, वह मनुष्य का भ्रम दूर करके उसको सही रास्ता दिखा देता है। उसके पास भीड़ ज्यादा नही मिलेगी। भाव यह है कि ताली दोनो हाथों से बजती है। लोहा और लुहार जहां दोनो झूठे हो फिर क्या किया जाए। कहा है -

''गुरु भी दुर्लभ, चेला भी दुर्लभ।

कहीं योग से मेल मिला।।''

प्रश्न - ४३ आम सत्संगी की शिकायत है कि नाम लेने के बाद वो ध्यान में बैठते है परन्तु ध्यान नही बनता। ऐसा क्यों ?

उत्तर - जिसको आम सत्संगी नाम समझता है, वह नाम नही है। नाम के लिए कहा गया के लिए कहा गया है-

''नाम रहे चौथे पद माहि, यह ढूंढे त्रिलोकी माहि।''

दूसरी बात नाम के लिए सतगुरु के पास जाता भी कौन है ? लोग काल कर्म के मारे हुए यहां शरीर, मन धन इत्यादी से दुखी है और वे भेड़चाल में आकर सहारा लेने के लिए गुरु के पास जाते है और गुरु भी उनको सहारा देने के लिए तैयार ही बैठे है। यहां अधिकतर ऐसा हो रहा है कि-

''लोभी गुरु लालची चेला, दोनो नरक कुण्ड में खेला।''

अब नाम का अधिकारी कौन है ?

''विषयन से जो होवे उदासा, परमार्थ की जा मन आसा,

धन सन्तान प्रीत नही जाके, जगत पदार्थ चाह नही ताके,

तन इन्द्री आसक्त नही होई, नींद भूख आलस जिन खोई,

विरह बाण जिन हृदय लागा, खोजत फिरे साध गुरु जागा''

''साध फकीर मिले जो कोई, सेवा करे करे दिल जोई

ऐसी करनी जाकी देखे, आप आय सतगुरु तिस मिले।।''

''सतगुरु वचन सुने जब काना, उमंगे हृदय प्रेम समाना।

सतगुरु से जब प्रीत लगावे, दया मेहर कुछ उनकी पावे।।"

अब आप समझ गए होंगे कि ऐसी मन में जिसके तड़प है, उसे गुरु बहुत यहज में ही मिल जाता है। मेरे साथ यह घटना घटी हुई है। मैंने बहुत गुरुओं को देखा और एक बार व्यास बाबा चरण सिंह जी के पास भी गया और फिर वहां से सीधा पंडित फकीरचन्द जी महाराज के पास गया और उनके पास १५ या २० मिनट बैठते ही सन् १९५६ में वह नाम अन्दर में प्रकट हो गया। यह तो मनुष्य के अन्दर ही विद्यमान है। गुरु तो वास्तव में गुरु ही है जो उससे हर समय नाम की रेडियेशन (विकिरणधारा) निकलती रहती है। कोई लेने का इच्छुक तो हो। जैसे कहा है-

"फैज का दर है खुला, शर्त यह है कोई मांगने साहिल आए।"

नाम का सच्चा अधिकारी यदि किसी अपूर्ण गुरु के पास भी चला जाता है तो उसकी सच्ची भक्ति और प्रेम के कारण गुरु भी पूर्ण हो जाता है। कबीर का उदाहरण इसमें मुख्य है तथा ऐसे और भी बहुत से प्रमाण मेरे पास है।

अत: ध्यान न बनने के यही मुख्य कारण हैं कि जीव तरह-२ के भ्रम, शंकाओं से घिरा हुआ है और उसका मन स्थिर नही है। दूसरा, उसका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य गिरा हुआ है। तीसरा वह दुनियावी इच्छाओं से दुखी है, नाम की उसे सच्ची चाह नही है। अत: नाम के साथ उसका गुरु के प्रति विश्वास व सत्संग सुनना अनिवार्य है। गुरु के सत्संग से उसे धीरे-२ यह बात समझ में आ जायेगी कि ध्यान उसी का बनेगा जिसका ब्रह्मचर्य कायम होगा। इससे वह अपना धीरे-२ सुधार करेगा तो शायद उसका साधन बनने लग जायेगा। यह रहनी का मार्ग है। एक उदाहरण से समझिए।

मेरे गुरु पं.फकीरचन्द जी महाराज कहा करते थे कि एक बार एक सेना का कैप्टन बाबा सावन सिंह जी का कार ड्राईवर था। उसको कई साल कार चलाते हुए हो गए थे परन्तु उसका ध्यान नही बना। उसने बाबा सावन सिंह जी महाराज पर अदालत में यह कह कर मुकादमा कर दिया कि महाराज जी ने मुझे कहा था कि मैं तेरे को सतलोक पंहुचा दूंगा और इसीलिए मैंने इनकी कार इतने दिन चलाई परन्तु मेरा ध्यान नही बना और न ही मैं सतलोक पंहुचा हूं। उसने २०-३० हजार का दावा किया था जिसे सत्संगियों ने बीच बचाव करके मुकदमा बन्द करवा दिया।

वही कैप्टन बाद में पं. फकीरचन्द जी से मिला और उसने उनको यह कहानी बड़े घमण्ड से सुनाई पं. फकीरचन्द जी महाराज ने उसका चेहरा देखा और कहा- भाई ! इा जन्म में तो आपका ध्यान लग नही सकता और न ही आपको सतलोक के दर्शन हो सकते हैं। कैप्टन के द्वारा कारण पूछे जाने पर महाराज फकीर चन्द जी ने कहा कि भाई आप बहुत कामी मनुष्य है। आपने अपना सब कुछ खो दिया है जबकि ध्यान मे ब्रह्मचर्य का कायम होना जरुरी है। उसने उत्तर दिया कि आप यह गलत कह रहे हैं क्योंकि मैंने शादी ही नहीं की है। तब महाराज फकीरचन्द जी ने कहा क्या आपने अपने मन या विचार से स्त्री संग नही किया है और अपने वीर्य को नष्ट नही किया है ? फिर उस कैप्टन ने स्वीकार किया कि मैं सुन्दर स्त्रियों के फोटो अपने विद्यार्थी जीवन से अब तक पास रखता आ रहा हूं और घण्टा आध-घण्टा उन्हे रोज देखता भी हूं परन्तु स्त्री से वैसे मैने भोग नही किया है। इसके बाद महाराज फकीरचन्द जी ने कहा कि भाई ! न तो तुमने बाबा सावन सिंह जी को गुरु माना था और न तुम्हारा यह विश्वास था कि वह परमात्मा का स्वरुप है। दूसरा आपका मानसिक ब्रह्मचर्य बहुत गिरा हुआ है। अत: आप

सतलोक के अधिकारी नहीं हैं। उस कैप्टन ने उत्तर दिया कि यदि ऐसी बात थी तो यह बात मुझे बाबा सावन सिंह जी ने क्यों नही बताई और मुझसे अपनी कार क्यों चलवाई ? इस पर फकीरचन्द जी महाराज ने कहा कि यह तो बाबा जी ही जाने परन्तु जो बात मेरे अनुभव में आई, वह मैंने आपको बता दी क्योंकि आप अध्यात्म को बहुत छोटी व घटिया बात कह रहे थे। तो मैंने स्पष्ट कर दिया है कि नाम लेने पर भी सत्संगियों का ध्यान क्यों नही बनता है।

प्रश्न - ४४ प्राय: ऐसा देखा जाता है कि जब बुरे लोग सन्तों के पास जाते है तो दूसरे लोग यह सोचकर सन्त पर अंगुली उठाते है कि ऐसे लोग उनके पास क्यों जाते है ?

उत्तर - पहली बात सन्त की दृष्टि में कोई बुरा मनुष्य है ही नही। उसे तो सब में परमात्मा ही नजर आता है। जो बुरा भला देखता है वह सन्त ही नही बना है। जिसकी दृष्टि सम है वही सन्त है। जैसे-

''जिधर देखता हूं, उधर तू ही तू है।

हर शै में जलवा तेरा हुबहू है।।''

अब रही बात सन्त पर अंगुली उठाने की, सो उसके लिए ऐसा कहा है-

''निन्दक नेरे राखिए, आंगन कुटी बसाय।

बिन साबुन और पानी के, मैल साफ हो जाय।''

ऐसे अयोग्य मनुष्य जिनका अभी अध्यात्म ज्ञान लेने का समय नही आया है उन्हे दूर रखने के लिए सन्तों के पास पुलिस या सेवक नही है। इसलिए ऐसे निन्दक मनुष्य सन्तों के

चौकीदार है जो अनाधिकारी सज्जनों को सन्त की निन्दा करके उनके पास जाने ही नही देते है। ऐसे निन्दक सन्तो के नि:शुल्क यानी बिना वेतन के सेवक है। आश्रमों में जो सेवक रहते है वो भोजन तो भोजनालय में करते है परन्तु निन्दक तो सन्त की सेवा निस्वार्थ ही करते है, कुछ लेते भी नही है। बहुत ही ईमानदार चौकीदार है।

दूसरा, जो घटिया संस्कारों के मनुष्य सन्तों के पास जाते है तो उसके लिए यह समझें कि धोबी घाट पर मैले कपड़े ही धुलने के लिए जाते है, साफ नही। यानी जिस सज्जन के घटिया विचार या संस्कार हो, उनको ही सन्त के सत्संग, दर्शन व सेवा की जरुरत है ताकि उसके घटिया संस्कार बदल कर बढ़िया संस्कार देकर उसका मानव जीवन सुन्दर बनाया जा सके। यह लोक विचारों का है, मनुष्य जैसा सोचेगा वैसा ही होगा। "As you sow, so shall you reap", अर्थात् जैसा बोओंगे, वैसा ही काटोगे। सन्त ऐसे मनुष्यों को यह भेद समझा कर उसके घटिया विचारों से उसे ऊपर उठा देता है। यानी उसके जीवन को बदल देता है।

प्रश्न - ४५ सतगुरु के चोला छोड़ने पर क्या उसकी धार उसके गुरुमुख चेले में आ जाती है ?

उत्तर - मेरा इस बात का अनुभव नही है कि चोला छोड़ने पर उसके गुरुमुख चेले में सतगुरु की धार आती है या नही। मैं तो पहले दिन ही सतगुरु जी से मिलने गया था और तब मुझे १५ या २० मिनट की संगत से ही सन्तों की सबसे ऊंची धार, निज नाम या सार शब्द का अनुभव हो गया था जिसे मै आज भी अनुभव कर रहा हूं। सतगुरु के चोला छोड़ने के बाद वाली बात तो वही गुरुमुख चेले जाने कि उनमें वह धार आई है या बिना

धार के ही वह गद्दी सम्भाले बैठे हैं। यह बात तो अनुभव की है। किसी दूसरे का अनुभव मैं क्या बता सकता हूं ?

अब तक समझने की यह है कि वह धार है क्या ? वह धार है-अन्दर शब्द का सुनना जो जीवन भर बन्द होने वाली बात ही नही है। उसी को सार शब्द या सत् शब्द कहते है। यह मनुष्य के अन्दर ही है, बाहर से कुछ आता नही है। बाहर से सतगुरु के संस्कार मिले होते है। जब मनुष्य का मन शुद्ध या पवित्र हो जाता है तब वह खुल जाता है। वह सतगुरु की हाजरी में भी खुल सकता है, सतगुरु के चोला छोड़ने पर भी खुल सकता है और बाद में भी खुल सकता है। यह सब अज्ञान व भ्रम की बातें है जो अनुभवहीन सत्संगी बात का बतंगड़ बनाते रहते है।

वास्तव में पूर्ण अनुभवी पुरुष इस संसार में अपनला कोई मिशन या ख्याल लेकर आता है और वह अपने संस्कार अपने प्रेमी सत्संगियों में छोड़ जाता है। छोड़ जाने का यहां पर अर्थ नही है कि वह कुछ दे जाता है, बल्कि उसका ख्याल स्वाभाविक रुप से एक से निकल कर दूसरे में पंहुच जाता है। परन्तु अज्ञानी लोग जो यह सोचते है कि उस पवित्र महापुरुष की रुह उसमें प्रवेश कर जाती है, यह कोरा भ्रम है। सच्चाई तो यह है कि वह ख्याल या विचार जो उसने प्रकट किया है, वह दूसरे मनुष्यों में सत्संग और संगत द्वारा प्रभावित हो जाता है और फिर वह समय के अनुसार किसी न किसी रुप में फैलता रहता है। मेरे विचार से जहां कहीं भी सन्तों और फकीरों की शिक्षा की व्यवस्था है, हर जगह वही धार या ख्याल काम कर रहा है। तो वह धार है मानवीय सुरत की आनन्द व शान्ति की अवस्था। मगर यह आनन्द व शान्ति की अवस्था पूर्ण अनुभवी महापुरुष से सत्य के रहस्य को समझ कर निज अनुभव से ही प्राप्त होगी। इसलिए सतगुरु को

परमात्मा का स्वरुप मानकर उसके दर्शन, सेवा व सत्संग से रहस्य समझ कर, साधन करके अपना निज अनुभव कर लो। इसी में आपका कल्याण है।

प्रश्न - ४६ राधास्वामी वाणी में लिखा है कि सन्त खुदा और ईश्वर के पैदा करने वाले है। क्या यह सच है ?

उत्तर- मैंने राधास्वामी वाणी ठीक से पढ़ी नही है क्योंकि मेरा काम सहज ही हो गया था। परन्तु इस बात को मैंने क्या अनुभव किया है या क्या समझा है ? वह लिखता हूं। हमारे ऋषि-मुनि, सन्त-महात्माओं ने ध्यान लगाकर आत्मा-परमात्मा की अपने अन्दर खोज की और उनका जो अनुभव हुआ, वह लोगों को लिखकर या सत्संग में बताया। इस विचार से वह ईश्वर जो एक शक्ति है जिससे यह सब संसार चल रहा है, उसका ज्ञान मनुष्य को दिया। उन्होंने बताया कि मनुष्य का असली रुप उसका निज रुप है जिसे अलख,अगम और अनामी कहा जाता है। उससे काल की उत्पति इसी प्रकार होती रहती है जैसे दीपक से धुंआ। इस मनुष्य शरीर के तीन भाग है-स्थूल, सूक्ष्म व कारण। मनुष्य के माथे से नीचे का भाग स्थूल, माथे से लेकर सिर तक जहां मनुष्य के बाल मिलते है व सूक्ष्म उससे ऊपर का भाग कारण कहलाता है। यह सबके सब हमारे निज रुप से प्रकट होकर उसके आधीन रहते है। इस प्रकार दुनिया को सन्तों ने ही अपने अनुभव से बताया है कि ईश्वर क्या है और कहां रहता है ? इस विचार से मैं समझता हूं कि सत्न ईश्वर सन्त ईश्वर के पैदा करने वाले है।

जैसे मुहम्मद साहब ने ध्यान लगाया तो उसको इलाहम हुआ कि मुहम्मद मैं एक हूं, लोगो ने अज्ञानवश मुझे अलग-अलग समझा हूआ है। इनको आप ज्ञान दो। यह बात मुहम्मद साहब ने अपने ध्यान में अनुभव की ओर उसने लोगों को बताया कि खुदा

एक है। इस विचार से मुहम्मद साहब खुदा को पैदा करने वाले है। खुदा तो पहले ही था परन्तु लोगों को मालूम नही था। उनको मुहम्मद साहब ने बताया। इस विचार या भाव से कह सकते है कि सन्त- फकीर ईश्वर या खुदा को पैदा करने वाले है, नही तो लोग कहा जानते थे। वे तो हर घर मे अलग-२ खुदा बनाए हुए बैठे थे। हिन्दू कितने देवी देवता बनाये बैठे है। सन्तो ने ही खोज कर के बताया है कि परमात्मा एक है और वह अंश रुप में हर मनुष्य में बैठा है जिस को सुरत कहा है। इस भाव से हम कह सकते है कि सन्त-फकीर खुदा व ईश्वर को पैदा करने वाले है वरना ईश्वर तो सब कुछ है। उसने सब सृष्टि को पैदा किया है। उसकी लीला कौन जाने वह तो अपरम्पार है।

प्रश्न - ४७ ब्रह्मा, विष्णु, महेश व अन्य देवी-देवता क्या है ? क्या ये भी आवागमन भोगते हैं ?

उत्तर - यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश परमात्मा की तीन शक्तियां है जिनसे सृष्टि-कर्म का चक्कर चलता है। ब्रह्मा सृष्टि उत्पन्न करने वाली शक्ति है, विष्णु पालन-पोषण करने वाली शक्ति और शिव संहार करने वाली शक्ति है। यह शक्ति छोटे रुप में भी है। मनुष्य सन्तान उत्पन्न करता है, उसका पालन पोषण करता है और ज्ञान होने पर यह विचार छोड़ जाता है कि मेरा यहां कोइ नही है। यानी एक चिार आया, उसका हमने पालन किया और फिर उसको त्याग दिया। इसी प्रकार परमात्मा सृष्टि उत्पन्न करता है, उसका पालन पोषण करता है और अन्त में सब उसी में समा जाता है। महापुरुषों ने इन तीन शक्तियों की श्क्ल सूरत बनाकर यह ज्ञान समझाया है।

बाकी रहे अन्य देवी-देवता, तो यह भी प्राकृतिक शक्तियों के नाम है। जैसे सूर्य देव, चन्द्र देव, अग्नि देव, जल देव, पवन देव इत्यादि। जो जीव के जीवित रहने में

सहायक है उन शक्तियों को हमारे महापुरुषों ने देवता का नाम दिया है। ऐसा मैंने समझा है, हो सकता है सच्चाई कुछ और हो। पहले हमारे ऋषि मुनियों ने मनुष्य की इच्छा पूर्ति के लिए उसे अनेक देवी-देवताओं जैसे गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा आदि को पूजने का ढंग बताया था। फिर उन्होने जल्दी ही अपना अनुभव बदल कर कहा कि भाई, इस मनुष्य की बहुत सी इच्छाएं है और जब तक इसको ज्ञान नही होगा, यह परम शक्ति को प्राप्त नही कर सकेगा। अत: इसके लिए उन्होने गुरु को ही सर्वोपरि मानने का आदेश दिया। जैसे कहा है-

''गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवोमहेश्वर।

गुरु:साक्षात् परब्रह् म्र तस्मै श्री गुरवे नम:।।''

यानी किसी पूर्ण विवेकी व अनुभवी जीवित महापुरुष को परमात्मा का स्वरुप मानने पर मनुष्य के सब काम सिद्ध हो सकते है। वह उसे ऐसा ज्ञान देगा जिससे वह सदा के लिए सब बन्धनों से मुक्त होकर इस मनुष्य शरीर में रहते-२ ही उस मुक्ति का अनुभव कर सकेगा। परन्तु अभी तक यह मनुष्य इतना अज्ञानी बना हुआ है कि वह उस परम सुख व शान्ति की तलाश में जगह-२ भटक रहा है और अशान्त है। यदि वह किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष की शरण में पंहुच जाए तो इसका सब तरह से कल्याण हो सकता है।

जैसा मैने अपने सत्संगो और पुस्तकों में लिखा है कि मेरे ही किन्ही शुभ कर्मो के फलस्वरुप मुझे पूर्ण अनुभवी महापुरष पं. फकीरचन्द जी मिले और १५ या २० मिनट में ही मुझे उस तत्व ज्ञान का अनुभव हो गया जिससे मैं इस संसार में स्वर्ग जैसा जीवन जीता आ रहा हूं और हर तरह से शान्त हूं। मुझे कहीं किसी देवी-देवता के पास

जाने की आवश्यकता नही पड़ी। बस एक ही गुरु से मेरे लोक व परलोक के सब काम बन गए। अब लोग इतने मूर्ख बने हुए है कि जगह-२ देवी-देवताओं के पास भटक रहे है। जबकि न तो किसी सज्जन ने ईश्वर को देखा है और नही किसी देवता से उसकी मुलाकात हुई है। यह सब सुनी सुनाई व घिसी-पिटी बातों की रट है। अब इन प्यारे सज्जनों को कौन समझाए कि गुरु से योग सीखकर खुद अपने अन्दर अनुभव करो और अपने रुप को पहचानों कि आप क्या है ? कहां से आए है और कहां जाना है ? बस अपने आपको जानने से ही यह सब भ्रम शंका दूर हो जायेंगे और आप जीवित ही मुक्ति का आनन्द व परम शान्ति का अनुभव कर लोगे।

प्रश्न- ४८ 'गीता' के ज्ञान के विषय में आपका क्या अनुभव है ?

उत्तर- 'गीता' बहुत से नाम लिखे है जैसे-गीता, गंगा, गायत्री, सीता, सत्या, सावित्री, ब्रह्मविद्या, ब्रह्मबली, श्री सिद्धा, मुक्ति गहनी, अद्धमात्रा, चिदानन्दा, बहुगुणी, भयनाशनी। अब जो मैंने अनुभव किया है और समझा है, वह यह है कि हर मनुष्य में जो सुरत नाम की जीवन धारा है, उसी के यह सब नाम है और इसे ही योगी सज्जन अपनी खोपड़ी में सुनते है। भगवान् कृष्ण ने युद्ध भूमि में अपने प्यारे भक्त अर्जुन को यही उपदेश दिया है कि हे अर्जुन ! तू योगी बन। योगी सब धर्म-कर्म के काम करने वाले महापुरुषों से श्रेष्ठ होता है। यह ऊपर जितने भी नाम गीता के बताए हैं, यह सब उस अन्दर वाले सार शब्द या राम नाम के सुनने के है, परन्तु बात बहुत रहस्य में कही गई है। बहुत से प्यारे महात्मा पूरी उम्र गीता का पाठ करते-२ चले जाते है और जहां तक गीता की 'मुक्ति गहनी' वाली बात है, वह उनके हाथ नही आती है। उन्हें इनके आस-विश्वास का फल तो मिलता है, उनके

लाखों शिष्य भी बन जाती है और वे बड़े महात्मा भी कहलाते हैं परन्तु जो गंगा उनके अन्दर बह रही है, वह उनके भाग्य में नही आती है।

तो मेरी दृष्टि में गीता का ज्ञान तो बहुत पवित्र है। परन्तु यह केवल योग का विषय है यदि केवल ग्रन्थ पढ़ने से ही कल्याण होता तो गीता, रामायण व अन्य शास्त्रों के पढज्ञने वाले दु:खी क्यों रहते ? शास्त्रों में यह ज्ञान रहस्य में दिया हुआ है। इसे समझने के लिए किसी पूर्ण विवेकी, अनुभवी वीतराग पुरुष की संगत व सत्संग अत्यन्त आवश्यक है। वैसे जो जैसा विश्वास रखता है उसके विश्वास का फल उसे अवश्य मिलता है। परन्तु अन्दर वाली गीता का ज्ञान व अनुभव तो योग साधना से ही मिल सकता है।

''यज्ञ किसको कहते, महायज्ञ कौन सा भाई

बता दे ज्ञान गीता का, पूछते है यह ब्रह्म ज्ञानी।।''

भाव यह है कि जसे ब्रह्मज्ञानी होते है, वही गीता के ज्ञान के अधिकारी होते है। यह ग्रन्थ पढ़ने वाले सज्जन गीता ज्ञान को क्या समझेगें। ब्रह्मज्ञानी वो सज्जन है जो ध्यान-योग में अन्दर सफेद रंक के निर्मल प्रकाश का अनुभव करते है। इन्ही को पहले ब्रहामण कहा जाता था। उसी के लिए यह योग है जो भगवान कृष्ण ने अपने प्यारे शिष्य अर्जुन को कहा था कि तू योगी बन और सहज में अपनी क्षत्रिय होने वाल कर्म भी कर। मेरा जो सहज साधन योग का अनुभव है वह शायद गीता ज्ञान का ही उत्तम सहज योग है।

प्रश्न – ४९ हिन्दुओं में 'ॐ' नाम को सबसे बड़ा क्यों कहा गया है ?

उत्तर - हिन्दू ऋषि-मुनियों ने इस 'ॐ' ध्वनि का अनुभव करके कहा है कि यह 'ॐ' नाम सबसे बड़ा है। जैसे-

''ॐ नाम सबसे बड़ा, इससे बड़ा न कोय।

जो इसका सुमिरन करे, शुद्ध आत्मा होय।।''

इसी 'ॐ' नाम को राधास्वामी पन्थ में ऐसे कहा है-

''शब्द बिना सारा जग अन्धा, काटे कौन मोह का फन्दा।

शब्द ही सूर शब्द ही चन्दा, शब्द कमावे मिले आनन्दा।।''

''ताते शब्द ही शब्द कमाओं, शब्द बिना कुछ और न ध्याओ।

शब्द भेद तुम गुरु से पावो, फिर शब्द में जाय समाओ।।''

इस 'ॐ' का स्थान मनुष्य के माथे के बीच में है। जो योगी या साधक अपनी सुरत को माथे के बीच में एकाग्र करता है और एकाग्रता की हालत में अपने इष्ट का रुप देखता है, लाल रंग का प्रकाश देखता है और 'ॐ' की ध्वनि सुनता है, वह योगी इस लोक या परलोक का जो भी ज्ञान चाहता है, उसे प्राप्त हो जाता है। जितने भी ऋषि-मुनि हुए है सबने इस 'ॐ' का स्थान स्थूल और सूक्ष्म ज्ञान का केन्द्र है। इस 'ॐ' शब्द को इसलाम और क्रिश्चियन में 'अमीन' कहा है।

यह जितना भी विज्ञान है , सब का सब इस 'ॐ' के स्थान पर एकाग्रता का फल है। जो भी वैज्ञानिक किसी वस्तु के साथ प्रयोग करने की इच्छा लेकर जाने या

अनजाने में इस 'ॐ' के स्थान पर अपने मन को एकाग्र करता है तो उसकी एकाग्रता के अनुसार उसको उसका ज्ञान हो जाता है। अर्थात इस 'ॐ' नाम को इसलिए सबसे बड़ा कहा गया है कि जिस भी चीज या ज्ञान की इच्छा लेकर कोई योगी, आध्यात्मिक या वैज्ञानिक इस स्थान पर अपने मन की एकाग्र करता है, उसको उसका ज्ञान हो जाता है। यह अनुभव का विषय है, करके ही जाना जा सकता है।

प्रश्न - ५० 'ॐ'के स्थान पर साधन करने वाला महात्मा लोगों को अपनी तरफ अधिक आकर्षित करता है जबकि सत्न गति में साधन करने वालों में यह गुण कम देखने में आता है। क्यों ?

उत्तर – जैसा मैंने ऊपर बताया है कि 'ॐ' के स्थान पर साधन करने वाले योगी की इच्छा शक्ति बढ़ जाती है और उसकी इच्छा से ऋद्धि-सिद्धि प्रकट हो जाती है तथा नए-२ चमत्कार होने शुरु हो जाते है और यह दुनिया इन चमत्कारों से आकर्षित होती रहती है। मैं अपने प्रति विश्वास रखने वाले सत्संगियों से हर रोज इन चमत्कारों की घटना सुनता रहता हूं। परन्तु मैं तो पहले ही दिन परम दयाल जी महाराज की कृपा व उनकी रेडियशन के प्रभाव से सूक्ष्म लोक से आगे कारण लोक के अनुभव में ठहर गया और मैं इन चमत्कारों के रहस्य को जान गया कि यह तो सत्संगियों के ही विश्वास का फल है। दिन और रात के अधिक समय में मेरी शान्ति की अवस्था बनी रहती है और मुझे राग में वैराग है।

मेरी दृष्टि में अध्यात्म-ज्ञान के योगी के लिए यह 'ॐ' का स्थान बहुत बड़ी बात है परन्तु यह सूक्ष्म लोक में है और इसका साधक बहुत काम करता है। वह बड़े -२

आश्रम बनाता है और बहुत मनुष्यों को उद्धार करता है, परन्तु उस परम आनन्द व परम शान्ति की अवस्था से बहुत पीछे रहता है। मेरा कहने का भाव यह है कि इस लोक में अध्यात्म-ज्ञान का ज्यादा से ज्यादा काम 'ॐ' के स्थान का साधक ही कर सकता है। सन्त गति समता का स्थान है जिसको राधास्वामी वाणी में अलख, अगम और अनाम का नाम दिया है। वहां पहंची हुई सुरत केवल सार शब्द का अनुभव करती है। जब सुरत साधन से नीचे शरीर में आती है तब भी वहां का प्रभाव उस पर होता है यानी ऐसे साधक की सुरत अधिक समय विचारों से ऊपर ही रहती है। कोई खास मनुष्य ही उसको पहचान कर उसके दर्शन व संग का लाभ उठा सकता है। जैसे प्रारम्भ से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों में से कुछ ही विद्यार्थी पी.एच.डी. की शिक्षा तमक पंहुच पाते है। इसी प्रकार सन्त गति में रहने वाले योगी बहुत कम होते है और ऐसे योगी अपने पीछे बहुत कम लोगों को लगाते है। आप खुद ही देख लो कि बिना शिष्य बनाए, बिना दान दक्षिणा लिए निस्वार्थ भाव से ज्ञान देने वाले गुरुओं की संख्या कितनी है ? ऐसे सन्त अपनी समता या मस्ती की हालत में रहते है और अपनी काम से अपना जीवन-निर्वाह करते है। उसको उस समय के लोग पहचान नही पाते और बाद में उसकी खूब चर्चा व खोज होती है। इसलिए सन्त लोगों को अपनी तरफ आकर्षित नही करते है। वाणी में कहा है-

''हम कहें कौन से भाई, कोई मेली नजर न आई''

प्रश्न -५१ जिस व्यक्ति ने आचार्य पद्वी को ग्रहण किया है, उसमें क्या गुण होने चाहिए ?

उत्तर -यदि यह प्रश्न आध्यात्मिक आचार्य से सम्बन्धित है तो सबसेपहले उसके लिए आवश्यक है कि उसे अध्यात्म-ज्ञान का अनुभव होना चाहिए। अध्यात्म कहते है आत्मा-

परमात्मा सम्बन्धी अनुभव को। केवल शास्त्र पढ़ना या कथा जानना ही अध्यात्म-ज्ञान नही है। आध्यात्मिक आचार्य योगी हो और किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष से आधुनिक समय की सहज योग विधि सीख कर उसका अभ्यास करके इसका अनुभव किया हुआ हो। वह कथा कीर्तन या बातों का ही धनी न हो। ऐसी आत्मिक अनुभूति का मनुष्य ही अध्यात्म ज्ञान का आचार्य हो तो जो भी उसकी संगत करेगा, उसको सुख, शान्ति व लाभ मिलेगा।

आचार्य नाम ही सज्जनता व आचरण का है। अत: उसमे मन, वाणी का संयम, लालच का न होना और हम हलाल की कमाई का होना अत्यन्त आवश्यक है यदि उसमें चेले बनाने व दान दक्षिणा का लालच आ जाता है तो वह गिर जाएगा। विशेष गुण उसमें आत्मिक अनुभव होने का है जिससे सब गुण अपने आप आ जाते है। यदि आचार्य श्री का ध्यान गुरु - मुर्ति व इष्ट के स्वरुप से आगे राम नाम, सार शब्द व प्रकाश के अनुभव का नही है तो उसे सत्संग नही देना चाहिए। उसे पहले खुद अनुभूति करके अपना कल्याण करना चाहिए। उसके बाद दूसरों के कल्याण की बात आती है। इसके अतिरिक्त हम गृहस्थी है। अत: हमारा आचार्य भी गृहस्थी ही होना चाहिए। कोई त्यागी या सन्यासी नहीं। क्योंकि गृहस्थी और सन्सासी का कोई मेल नही है। जिसने स्वयं गृहस्थी का अनुभव न किया हो वह भला गृहस्थी को क्या ज्ञान देगा ? हमारे देश में प्राचीन काल से आध्यात्मिक आचार्य गृहस्थी ही रहे है केवल बीच के बुद्ध, जैन व नाथ पन्थों के समय को छोड़ कर। मैं खुद गृहस्थ जीवन में रहते हुए दुनिया के सब काम करते हुए उस सार शब्द या परमात्म तत्व की अनुभूति करते हुए सुंख व शान्ति का जीवन जीता आ रहा हूं। यह बहुत ही सहज साधन है क्योंकि बाहर से किसी पूर्ण अनुभवी

महापुरुष से संस्कार लेना है और अनुभव खुद ने अपने अन्दर करना है। यदि आचार्य का ऐसा अनुभव है तो वह दूसरों का कल्याण कर सकता है और ऐसा आचार्य दूसरों के रेडियशन से गिरता नही है।

प्रश्न - ५२ जब वनस्पति व पशु में भी जान है तो पशु पक्षी को खाना गलत क्यों?

उत्तर - वैसे तो हर शै में परमात्मा का जलवा है और जीवन सब में है जैसे गुरु नानक देव जी ने कहा है-

''जितने दाने अनन के, जीवा बंद न कोय।''

आप देखते है कि बड़ी मच्छी छोटी मच्छी को खाती है। बड़े जानवर शेर इत्यादि छोटे जानवरों को खाते है। पेड़-पौधे व वनस्पति में जान है परन्तु चह अचेतन अवस्था में है। दूसरा, इन बड़े पशु व जानवरों में जो गुण- अवगुण होते है तो उनको मारने से उनके भय व दुख के स्वभाव के अनुसार ही उनका गुण व अवगुण उनका मांस खाने वालों में भी पैदा हो जाते है। जैसे कहा है-कि **''जैसा अन्न, वैसा मन।''** यानी जो और जिस प्रकार का भोजन हम करते है । उसका प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है। हमारे आध्यात्मिक पुरुषों ने मांस मदिरा को साधक के लिए बहुत ही घटिया बताया है और इसका निषेध किया है। दुनिया के दूसरे भागों में इस बात का ध्यान नही दिया गया है। ये मांस-मदिरा गर्म तासीर रखते है और इससे मनुष्य में काम अंग अधिक प्रबल हो जाता है जो योगी के लिए बहुत गिरावट की वस्तु है। जैसे अंडा, मुर्गा आदि खाने वालों में विशेष जोर काम अंग का है। ब्राह्मणों ने तो भोजन के विशेष-२ गुण-अवगुण बताए है और उसके

अनुसार भोजन के सात्विक, राजसिक व तामसिक नाम दिए है। साधक के लिए केवल सात्विक भोजन ही बताया है।

हमारे देश में ऋषि,मुनि, ब्राह्मण व सन्तों ने अध्यात्म-ज्ञान का विशेष प्रचार किया है और जो ग्रन्थ उन्होने लिखे है उनमें साधक के भोजन और व्यवहार में दया भाव पर जोर दिया है। तथा किसी भी मनुष्य व पशु को मार कर खाना तो दूर रहा, उसको दुख देना भी हिंसा माना है। जैसे पहले सवारी के लिए ऊंट, घोड़े, या बैलगाड़ी चलती थी। उनको चलाना पड़ता था और कभी-२ वे पशु ठीक नहीं चलते थे तो उन्हें चाबुक भी मारना पड़ता था। महावीर और बुद्ध के समय में तो उनके अनुयायियों ने घोड़े, बैल की सवारी को छोड़ कर पैदल चलना शुरु कर दिया था ताकि पशु को कष्ट न दिया जाए। परन्तु आज जब सवारी के अन्य साधन जीप, कार, मोटर, जहाज इत्यादि हैं जिनको कोई दुख, तकलीफ नही होती है फिर भी जैनी भाई उसी पद्धति का अनुसरण कर रहे है और कुछ दूसरे सनातनी भाई भी तीर्थ यात्रा पैदल करते देखे जाते हैं। यह धर्म का महत्व नहीं समझते हैं और न कोई इनको समझा सकता है। यह पुरानी लकीर पीट रहे हैं और इसी को ही धर्म मानते हैं।

तो पशु-पक्षी व वनस्पति में अन्तर स्पष्ट है कि पशु पक्षी को भोजन के लिए मारते है तो यह तड़पते हैं, कहराते हैं जबकि वनस्पति में यह बात नही होती है। चेतन और अचेतन का अन्तर है। वैसे दुनिया के अधिकतर लोग मांसाहारी है परन्तु कुछ ऐसे भी सज्जन हैं जो शाकाहारी हैं। दूसरे देशो में वहां के पादरी, काजी जो धर्म का ज्ञान देते हैं, खुद मांस का सेवन करते हैं। इसलिए इस

बात की चर्चा नही है। हमारे देश में अध्यात्म-ज्ञान पर इस बात का विशेष ध्यान रहा है यानी भारत आध्यात्मिक देश है। यह पूरी दुनिया में अध्यात्म का गुरु रहा है और अब भी है। कमी यह रही थी कि यह विज्ञान के प्रयोग में पिछड़ गया था। अब कुछ होश आया है कि अध्यात्म के साथ भारतवासियों को वैज्ञानिक भी होना जरुरी है। यह विज्ञान हमारे अध्यात्म के रास्ते में ही है। पहले यह था परन्तु बीच में कुछ समय की ऐसी धार आई कि जैन, बुद्ध व नाथों के समय में लोगों को भिक्षुक बना कर यह ज्ञान दिया जाने लगा और इसी बीच विदेशियों ने हमारे देश पर आक्रमण करके हमें गरीब व भिक्षु बना दिया। अब फिर सन्त पन्थ ने विधि बदली और पुरानी संस्कृति की याद दिलाई की कमाओ और जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति करो। आध्यात्मिक मनुष्य कभी भिक्षा नही मांगता है। वह तो जगत गुरु होता है। समय के अनुसार वह अपने आपको बदलता रहता है। आपको इस भोजन के विषय में अपना उदाहरण देता हूं।

मैं सेना में १९४१ में भर्ती हुआ और जल्दी ही अधिकारी पद पर उन्नति हो गई अंग्रेजों का समय था। सप्ताह में तीन दिन 'मैस' में मांस बनता था और शराब भी मिलती थी। उस समय मैंने गुरु जी संगत नही की थी परन्तु मैंने कभी मांस नही खाया। दो चार बार थाली में डाल भी दिया परन्तु मैंने नहीं खाया। शराब भी एक दो बार कुछ पी परन्तु फिर पूरी नौकरी में कभी नही पी। बर्मा के जंगल व दलदल इलाके में रहा फिर काश्मीर, नागा तथा अन्य पर्वतीय स्थानों पर रहा परन्तु कभी विचार ही नही आया और न मेरे स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव पड़ा

और बड़ी बात यह है कि न कभी पाप या पुण्य का कोई विचार आया। सहज में जीवन खुशी, प्रेम, आनन्द उमंग में चलता रहा।

प्रश्न -५३ आज का धर्म क्या है ?

उत्तर - आज का मनुष्य सब सुख सुविधा के साधन होते हुए भी सन्तुष्ट नही है और वह मन से अधिक बेचैन व भयभीत है तथा उसकी बुद्धि निश्चयात्मक नही है। उसके अन्दर जीवन की खुशी व उमंग नही है। अतः इस बुद्धि विज्ञान के युग में मनुष्य के लिए हर समय खुश व प्रसन्न रहने की अवस्था कानाम ही धर्म है। जैसे शास्त्रों में मर्ध का अर्थ धारण करना है। परन्तु इतनी बात से यह स्पष्ट नही होता कि क्या धारण किया जाए। धर्म की परिभाषा में कहा गया है कि **''सदा दीवाली साध के और आठों पहर आनन्द''** परन्तु यह बात तो केवल साधुओं के लिए कही गई है जो पुरानी पद्धति थी। आधुनिक समय में हम मनुष्य जाति की बात कर रहे है जो इस संसार में सुख, आनन्द, समृद्धि और शान्ति में जीवन जी सके। इसकी सहज विधि मेरे अनुभव के अनुसार यह है कि किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष से योग की विधि सीख ले जिससे वह हर समय जीवन की सभी चुनौतियों का सामना करते हुए भयमुक्त होकर खुशी का जीवन जी सके। हर समय खुश रहना सही धर्म की पहचान है।

प्रश्न-५४ जो आप सत्संगो में भोग में योग बताते हो, वह क्या है ?

उत्तर - भोग में योग समझने के लिए शब्द है-

''भाई कोई सतगुरु सन्त कहावे, जो नैनन अलख लखाने।

डोलत डिगे न बोलत बिसरे, जब उपदेश दृढावे।।''

''प्राण पूज्य क्रिया से न्यारा, सहज समाध सिखावे।

द्वार न रुंधे, पवन न रोके न अनहद उरझावे।।''

''यह मन जाय जहां लग जब ही, परमार्थ दरशावे।

सदा विलास त्रास नही कबहूं, भोग में योग जगावे।।''

जैसे नीचे के पंक्ति में कहा है कि ***''सदा विलास त्रास नहीं' कबहू, भोग में योग जगावे''*** अर्थात् जो हर समय, हर हालत में दुनिया के सब भोग भोगते हुए खुश रहें। और यह तभी हो सकता है जब जीवन के हर कार्य को वह साक्षी भाव से करता रहे और स्वयं साक्षी बना रहे। जैसे सब इन्द्रिया अपने-२ काम को कर रही है। उदाहरण के तौर पर भोजन सामने आया तो वह यह सोचता है कि मैं नही खा रहा, मुंह भोजन कर रहा है। और इसी प्रकार कोई बाहर का दृश्य आंखों के सामने आता है जिस तरह कोई कुत्ता या बिल्ला काम भोग की स्थिति में है तो उनको देखकर कामांग की तरफ विचार न करके यह सोचता है कि प्रकृति लीला कर रही है। इसी तरह से दूसरी इन्द्रियों के बारे में वह सोचता है यानी सब खेल खेलते हुए उसे भगवान् की लीला समझते हुए वह अपने आपको मुक्त रखता है। यह भोग में योग है। यह ज्ञान योग है।

प्रश्न-५५ जो आप सत्संगो में यह फरमाते है कि कुछ पाने के लिए ऊंची इच्छा रखो, लेकिन मनुष्य की इच्छा तो कभी समाप्त ही नही होती तो फिर वह इस मार्ग पर कैसे आ सकता है ?

उत्तर- इस परमात्मा की लीला में हमारे पिछले महापुरुषों ने अपने-२ अनुभव या खोज के दौरान तीन लोक बताए है जिसमें परमात्मा का छोटा अंश यह सुरत जो मनुष्य रुप

धारण करके खेल खेलने आती है तो यह लोक स्थूल का है। स्थूल लोक संकल्पमय है। जैसा संकल्प मनुष्य रखता है वैसा ही उसका जीवन बन जाता है। भाव यह है कि यह इच्छा का लोक है। मनुष्य की सुरत जो यहां आती है वह अपने प्रारब्ध कर्म, संस्कार या इच्छा लेकर आती है। उस इच्छा के अनुसार यह सुरत खेल खेलती है और उसका यह खेल तभी पूरा होता है जब वह अपनी इच्छा को भोग लेती है। उदाहरण के लिए आप खेल के मैदान में कोई खेल खेलने जाते हो और जब उस खेल को खेलकर थक जाते हो और खेल खेलने की इच्छा नही रहती तो आप वापिस अपने घर आ जाते हो। इसी तरह यह सुरत युग युगान्तरों से यहां खेल खेलने आई है और खेल को खेल रही है परन्तु इसका ज्ञान किसी को नही है कि यह कितने समय से यहां आई हुई है ? आप यह समझ ले कि इसमें मालिक की मौज है। जैसे कहा है-

''न अपनी खुशी आए न अपनी खुशी चलें''

लाई हयात, कजा ले चली चले।।

इसका भाव यह है कि न तो हम अपनी मर्जी से यहां आए और न अपनी मर्जी से यहां से जायेंगे। जब सुरत अपने खेल से थक जायेगी तो इसे वैराग होगा और वह अपनी मुकाम पर जाना चाहेगी और उसके लिए उसे कोई पूर्ण वैरागी पुरुष मिल जायेगा जो उसे इस तरह कि योग विधि बताकर और सत्संग देकर अगम का भेद दे देगा। यह मेरा अनुभव है, कोई दावा नही।

प्रश्न-५६ कामांग व क्रोध से ऊपर उठने की क्या विधि है ?

उत्तर- संक्षेप में इस काम, क्रोध आदि विकारों से ऊपर उठने की विधि ध्यान योग है जिसमें मनुष्य इन विकारों से ऊपर उठ सकता है। यह तो है मेरा और हमारे देश के सब

महापुरुषों का अनुभव है परन्तु पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिकों का यह कहना है कि काम, क्रोध से मनुष्य कभी ऊपर उठ ही नही सकता है। ध्यान योग के साथ जो दूसरी बात है वह यह है कि मनुष्य पूर्ण अनुभवी महापुरुष का सत्संग सुने जिससे उसको समझ, विवेक, अनुभव और ज्ञान हो जाए और इस ज्ञान से उसके सभी जन्म-जन्मान्तरों के शुभ और अशुभ कर्म जल कर भस्म हो जाते है। पीछे रहता है मालिक की रजा में राजी रहना। यानी जो वो करता है व अच्छा ही करता है। यहां पर आकर मनुष्य को पूर्ण शान्ति मिल जाती है।

प्रश्न- ५७ स्वास्थ्य और समाधि का क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर- स्वास्थ्य और समाधि का विशेष सम्बन्ध है जैसें आपके शरीर में कोई असमता है तो आपका ध्यान मुश्किल से बनेगा या बनेगा ही नहीं और ध्यान की एकाग्रता का नाम ही समाधि है। स्वास्थ्य- शारीरिक और मानसिक दो प्रकार का है और समाधि के लिए दोनों का स्वस्थ्य होना जरुरी है। जैसे आप मानसिक रुप से किसी बात से दुखी है तो जब आप ध्यान करेंगे तो वही विचार आपके सामने आ जाएंगे और आपको परेशान करेंगे और ध्यान बनेगर नहीं। यदि शरीर में किसी जगह पर पीडा है तो जब आप ध्यान करेंगे तो आपका मन एकाग्र नही होगा। बार बार ध्यान उस पीडा की तरफ जाएगा। अत: ध्यान-योग के लिए शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य अति आवश्यक है।

परन्तु एक विशेष बात यह है कि किसी ने सुमिरन ध्यान के द्वारा मन को एकाग्र करने का अभ्यास कर लिया है तो वह शारीरिक व मानसिक असमता में आसानी के साथ अपनी सुरत को सुमिरन ध्यान के अभ्यास से मन के मण्डल से ऊपर खींच लेता है जिससे वह शारीरिक व मानसिक असमता से ऊपर चला जाता है और जब तक वह

समाधि में रहता है, उसको शरीर और मन की असमता का कोई एहसास नही होता है। जैसे गहरी निद्रा में मनुष्य शरीर और मन के दुख को भूल जाता है, इसी तरह ध्यान योग का योगी जब चाहे शरीर और मन सवे अपनी चेतना को ऊपर खींच लेता है परन्तु यह अभ्यास की बात है आम आदमी के वश की बात नहीं।

प्रश्न- ५८ निर्विकल्प समाधि की स्थिति क्या है ?

उत्तर- जब ध्यान की अवस्था मे किसी प्रकार के संकल्प-विकल्प व नजारे रंग रुप कुछ नही आते है तो वह निर्विकल्प समाधि है इसकी दो स्थिति है। एक तो त्रिकुटी से ऊपर जब मन की एकाग्रता बन जाती है। परन्तु मन यहा कुछ काम नही करता। यह योग में महासुन्न का स्थान कहलाता है जो सन्यासियों के लिए उचित है परन्तु गृहस्थी के लिए यह ठीक नही है, क्योंकि वह एक ऐसे नशे में रहता है कि संसार का कोई काम नही कर सकता है और इस जीवन में रहते हुए बिना संसार के काम किए हमारा निर्वाह नही है। अत: यह स्थान गृहस्थियों के लिए बिल्कुल ठीक नहीं है। दूसरी स्थिति इसकी शब्द और प्रकाश है जिसमें प्रकाश महा आनन्द का अनुभव है और शब्द परम शान्ति का अनुभव है। इसी को दसवां द्वारा कहते है क्योंकि यहां मन कोई कामं नही करता है।

प्रश्न-५९ निज घर या चौथा पद क्या है ?

उत्तर- निज घर या चौथा पद वह है जहां से यह सुरत आई है वहां वह वापिस वह पंहुच जाती है। यानी यह बून्द रूपी सुरत शब्द रुपी समुद्र में लीन हो जाती है। जिसको कहा है:-

''शब्द प्रकट तब धरिया नाम।

शब्द गुप्त जहां हुआ अनाम।।''

प्रश्न- ६० अमी रस क्या है ?

उत्तर- इसको अमृत रस कहते है जहा साधन मे अन्दर सुरत सार शब्द का अनुभव करती रहती है और अन्त मे उसी मे जाकर मिल जाती है।

प्रश्न- जीव-मुक्त अवस्था क्या है ?

उत्तर- इसी मनुष्य जीवन को जीते हुए किसी वीतराग पुरुष की संगत व सत्संग से मनुष्य को जब होश आ जाता है कि यह जीवन तो कुछ दिन का है। उसके बाद मैं कहां जाऊंगा ? इस तरह के विचार जिसके मन मे आते है वह मनुष्य सत्संग मे यह बात समझ जाता है कि कर्म अच्छे या बुरे जो भी करुंगा उनको भोगना आवश्यक है, तब वह अपने गुरु या वीतराग पुरुष से यह प्रश्न करेगा कि क्या इन कर्मो को भी समाप्त करने की कोई विधि है ? तब उसको वह महापुरुष बतायेगा कि ज्ञान की अग्नि से प्रारब्ध संचित व क्रियामान् कर्मो को जलाकर इसी जन्म में भस्म कर सकते हो और तुम मुक्त अवस्था व मोक्ष की स्थिति तथा निर्वाण पद को अनुभव कर सकते हो। यानी इसी जीवन में मनुष्य जीवन मुक्त के आनन्द का अनुभव कर सकता है।

ये जितने भी मनुष्य के लगाव या सम्बन्ध हैं- स्थूल, सूक्ष्म, धर्म-कर्म और सब तरह के विश्वास आदि उनसे मुक्त होकर जीवन जीने का नाम ही जीव-मुक्त अवस्था है अर्थात् अपने स्वयं के अध्ययन में मस्त रहना ही जीव-मुक्त अवस्था है।

प्रश्न-६२ योग की आसान विधि क्या है ?

उत्तर- योग की आसन विधि वह है जिससे सहज मे मनुष्य का मन एकाग्र हो जाए क्योंकि हर मनुष्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न है अतः हर मनुष्य पर एक ही विधि लागू नही हो सकती। जिस तरह कोई मनुष्य रोगी है और वह इलाज के लिए किसी डाक्टर के पास जाता है और जो दवा वह डाक्टर देता है उससे आराम न आए तो वह कह सकता कि डाक्टर को मेरे रोग की समझ नही आई इसी तरह किसी महापुरुष के पास कोई अध्यात्म का जिज्ञासु ज्ञान के लिए जाता है और उस महापुरुष को मनुष्य की प्रकृति का ज्ञान नही है और जो योग की विधि वह बताए उससे साधक या जिज्ञासु का मन एकाग्र न हो सके या उसकी समाधि न लगे तथा उसको सन्तुष्टि न हो तो वह विधि उसके लिए ठीक नही है। मेरा कहने का भाव यह है कि योग की आसान विधि वह है जिससे साधक का मन एकाग्र हो जाए या निर्मल हो जाए।

वैसे योग की अनेक विधियां है जिनकी इस आधुनिक समयमें आवश्यकता नही है परंतु फिर भी आज के महापुरुष उन पुरानी लकीरों को पीटते आ रहे है। जैसे कुण्डली योग की आज के युग में अध्यात्म ज्ञान के लिए कोई आवश्यकता नहीं है। यह केवल सिद्धि शक्ति या चमत्कार दिखाने के लिए प्रयोग किया जाता था। अध्यात्म में केवल स्वयं का अनुभव करने की बात है जो अति सरल व सीधा रास्ता है। यहां पर कोई सिद्धि शक्ति की बात नहीं है। यह परम शान्ति व परम आनन्द को अनुभव करने का योग है परन्तु देखने में ऐसे आता है कि आज के बहुत से महापुरुष यह कुण्डलिनी योग तथा सिद्धि शक्ति प्राप्त करने की विधि अपने शिष्यों को बताते है। तो इस युग में योग की सबसे आसान व अहानिकारक विधि है जैसे नीचे शब्द में कहा है:-

''ध्यान प्रथम युग मख युग दूजे।

द्वापर परितोषित प्रभु पूजे।।

कलि केवल एक नाम आधार।

श्रुति स्मृति सन्त मत सारा।।''

अर्थात कलयुग में केवल नाम का आधार है और इसमे यज्ञ, तीर्थ-यात्रा , मूर्ती-पूजा इत्यादि की आवश्यकता नहीं है परन्तु फिर भी मनुष्य की प्रकृति विशेष है। यह बात वक्त गुरु पर छोड़ दी जाती है जो मनुष्य की प्रकृति के अनुसार उसके अधिकार व संस्कार देखकर उसे विधि बताता है जिससे उसका मन निर्मल हो जाता है और उसे अपने अन्दर ही परम आनन्द व परम शान्ति का अनुभव हो जाता है।

प्रश्न- ६३ मनुष्य अपने जीवन में हमेशा खुश कैसे रह सकता है ?

उत्तर- खुशी वास्तव में मनुष्य के अन्दर है और इस खुशी को वह बाहर तलाश करता आ रहा है जैसे बच्चा पहले इसे खेल में तलाश करता है उसके बाद शिक्ष में फिर नौकरी पेशे या काम धन्धे में फिर विवाह-शदी मे फिर सन्तान उत्पति में फिर मकान दुकान या भवन निर्माण आदि में उसे तलाश करता है और अन्त में वह इस खुशी की तलाश में कोरा ही रह जाता है और खुशी से वह बहुत दूर रह जाता है। जैसे कहा है:-

''वस्तु कहीं ढूढें कहीं, केहि विधि आवे हाथ।

कहे कबीर तब पाइये, जब भेदी लीन्हा साथ।।''

भेदी लीन्हा साथ कर, दीन्ही वस्तु लखाय।

कोटि जन्म का जन्थ था, पल मे पहुंचा जाय।।

कहने का भाव यह है कि वह खुशी मनुष्य के अन्दर है और वह इसे बाहर तलाश करता है। यदि कोई उसके शुभ कर्म हो तो उसका पूर्ण अनुभवी महापुरुष से मेल हो जाता है और वह उसको यह खुशी बाहर तलाश करने की बजाय अन्दर ही इसे प्राप्त करने की सहज विधि बता देता है जैसे कहा है।

तेरा साई तुम में ज्यू पुहूपन में वास।

कस्तूरी का मृग ज्यों, फिर फिर ढूंढे घास।।

प्रश्न-६४ इस संसार या लोक को सुन्दर बनाने का तरीका क्या है ?

उत्तर- इस संसार को सुन्दर बनाने का तरीका है शिव सकंल्प व आस-विश्वास रखना, क्योंकि यह संसार संकल्पमय है। जैसे जिसके विचार हैं, आस और विश्वास हैं वैसे ही उसका जीवन बन जाता है मनुष्य को यह ज्ञान नही कि किस तरह के ये विचार रखे जाए और कैसे यह ससांर सुन्दर बनाया जाए। इसी बात के लिए यह सत्संग की विधि है। जैसे कहा है-

सत्संगत मद मंगल मूला।

सोहि फल सिद्धि सब साधन फूला।।

सबहि सुलभ सबा दिन सब देशा।

सेवत सादर सुमन कलेशा।।

तो मनुष्य को सत्संग में सुध आती है कि कैसे विचार रखने से उसको जीवन के हर क्षेत्र में सफलता और समृद्धि प्राप्त हो सकती है ? बिना सत्संग के और

कोई उपाय नहीं है, क्योंकि संकल्प का रहस्य उसे सत्संग में ही मालूम हो सकता है जैसे कहा है-

''बिना सत्संग विवेक न होहि।

राम कृपा बिन सुलभ न सोहि।।''

सत्संग भी अपने शुभ कर्मो से ही प्राप्त हो सकता है और शुभ कर्म के फलस्वरुप ही वह सत्संग को समझ सकता है जैसे आजकल सत्संगो मे बहुत भीड़ दिखाई देती है लेकिन फिर भी लोग कोरे के कोरे रहते है और उनके जीवन मे कोई उन्नति वाली बात नजर नही आती। क्योंकि जैसे ऊपर कहा है कि सत्संग को आदर सम्मान के साथ सुनना चाहिए और उस पर श्रद्धा-विश्वास के साथ अमल करना चाहिए तब मनुष्य के सब प्रकार के शारीरिक, मानसिक, आर्थिक व आत्मिक क्लेश समाप्त हो सकते हैं। तो प्रश्न था कि इस लोक को सुन्दर कैसे बनाएं संक्षेप मे इसका उतर है ***'शिव सकंल्पमस्तु'*** अर्थात् हे मनुष्य ! तू सुन्दर-सुन्दर विचार रख यानी Positive Thinking रख, तेरा यह लोक सुन्दर बन जायेगा।

प्रश्न-६५ संसार का कल्याण कैसे हो सकता है ?

उत्तर- यह प्रश्न बहुत बड़ा है और संसार का कल्या जिसने यह संसार बनाया है उसी की कृपा से होगा मेरे अनुभव के अनुसार यदि मनुष्य अपना कल्याण कर ले तो उसके लिए संसार का कल्याण हो सकता है। जैसे कहा है :-

'आप सुखी तो जग सुखी।

आप दुखी तो जग दुखी।।'

यानी मैं यह समझता हूं कि कोई आदमी यदि खुद सुखी है तो उसको यह पूरी दुनिया सुखी नजर आती है। यह दृष्टि सृष्टि का खेल है। ***''जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।''*** किसी मनुष्य ने यदि पीली ऐनक लगा ली है तो उसको पूरी दुनिया पीली नजर आती और हरी ऐनक लगा ली है तो उसको सब जगह हरियाली ही हरियाली नजर आती है। इसी तरह जो सज्जन है उसको सब सज्जन नजर आते हैं। और जो खुद दुखीर है उसको सब दुखी नजर आते है तो प्रश्न था कि संसार का कल्याण कैसे हो सकता है ?

इस विषय में मेरा भाव यह है कि अपने खुद के कल्याण में ही संसार का कल्याण है। मनुष्य को चाहिए कि वह जीवन के हर क्षेत्र में अपने कल्याण, सुख, समृद्धि को पाने का प्रयास करे। इसी में सबका कल्याण है। यह मेरा अनुभव है, कोई दावा नहीं।

प्रश्न-६६स्वर्ग, नरक क्या है ?

उत्तर- स्वर्ग नाम सुख का है और नरक नाम दुख का है। जब हम खुश होते है, किसी उमंग में होते है, आशावादी भाव में होते है, श्रद्धाभाव में होते है और हंसमुख होते हैं तथा खुशी में नाचते है गाते हैं, सत्संग इत्यादि सुनते हैं और प्रेमभाव में होते है तो हम स्वर्ग में होते है जो दो प्रकार का होता है। एक तो भगवान की बनाई वस्तुओं से प्रेम करना जैसे- पुत्र, स्त्री, पति, गुरु, पीर, पैगम्बर इत्यादि। यह ***'इश्क मिजाजी'*** है। और दूसरा भगवान का स्वरुप समझ कर साकार या निराकर रुप मं यह ***'इश्के हकीकी'*** है। जिसने ***इश्के मिजाजी*** नहीं किया वह ***इश्के हकीकी*** क्या करेगा ? तो ऊपर वाली जिस भी स्थिति में हम होते हैं तो हम स्वर्ग में होते हैं अर्थात् जब आप घर में प्रेम से जीवन जीते हैं और मन प्रसन्न रहता है तो समझ लें कि आप स्वर्ग का सुख यहीं भोग रहे हैं। इसके

विपरीत जब आप निराश हैं, चिन्तित हैं, किसी प्रकार के शारीरिक, मानसिक, आर्थिक या आत्मिक दुख में हैं तो आप समझ लें कि आप यहीं पर ही नरक भोग रहे हैं। इसको ऐसे समझिए-

जाको दर्शन इत है, वाको दर्शन उत।

जाको दर्शन इत नही,वाको इत न उत।

यानी जो इस जीवन में सुखी है, वही शरीर छोड़ने के बाद सूक्ष्म लोक में सुख का आनन्द लेगा। जैसे हम जागते हुए आनन्द लेते है और स्वप्न लोक में जो आनन्द लेते हैं, वह सूक्ष्म लोक का आनन्द है। यह तो बात हुई इस लोक की। इसी तरह हमारे महापुरुषों ने कहा है या अनुभव किया है कि मनुष्य जब यह शरीर छोड़ देता है तो यह जीवात्मा सूक्ष्म लोक में चली जाती है जो केवल विचारों का है। यानी जो है नहीं केवल भासता है। वहां पर भी ये यहां के संस्कार उसके साथ जाते है और अपनी संकल्प से यदि हमने शुभ कर्म करते है तो सुख का अनुभव करती है और उस सूक्ष्म लोक को स्वर्ग की संज्ञा दी है और अशुभ कर्म के कारण शरीर छोड़ने के बाद यह जीवात्मा जो दुख का अनुभव करती है जो वास्तव में है नहीं केवल उसको भासता है, उस स्थान को नरक की संज्ञा दी गई है। इस बात को फिर समझ लीजिए कि हमारे ही शुभ कर्म से कोई बात जो मन के अनुकूल हो जाती है, उसको सुख कहा है और जो बात मचन के प्रतिकूल होती है, उसका नाम दुख या नरक है।

प्रश्न-६७ राधास्वामी मत क्या है ?

उत्तर- राधास्वामी का अर्थ राधास्वामी पन्थ वालों ने इस तरह बताया है-

''राधा आदि सुरत का नाम, स्वामी आदि शब्द पहचान''

भाव यह है कि राधा परमात्मा का छोटा अंश है जो मनुष्य रुप धारण करके यहां खेल कर रही है। इसको सन्तों ने सुरत कहा है और जिस शब्द रुपी समुद्र की यह बून्द है उस शब्द के सागर को स्वामी या कुल मालिक कहा है। बाकी दूसरे महापुरुषों ने अपने भाव अपनी शैली में बताए है जिसका अर्थ यही है कि जीवात्मा जो मनुष्य रुप में खेल कर रही है यह कुल मालिक या परमात्मा का एक छोटा अंश है और जिस समुद्र की यह बून्द है उस समुद्र को शब्द या परमात्मा कहा है-

दूसरा, जो मनुष्य भजन करता है उसको आप राधास्वामी कह सकते है। जैसे आपकी सुरत अपने अन्दर उस परमात्मा के नाम को अनुभव करती है तो आप में वह परमात्मा तत्व के गुण सहज ही आ जायेंगे और ऐसे मनुष्य को राधास्वामी कहते है। इसके धर्म में बहुत से नाम है जैसे पूर्ण काम योगी, पंहुचा हुआ महात्मा, वीतराग पुरुष और भी जितने नाम से ऐसे आदमी को पुकारा जाता है, राधास्वामी पन्थ में ऐसे महापुरुष का नाम सन्त सतगुरु रखा हुआ है। तो आत स्पष्ट है कि सनातन धर्म के अनुसार भजन करने वाले आदमी को यदि हम राधास्वामी कहें तो गलत नही। यह मेरा अनुभव है कोई दावा नही कि यही सत्य है।

प्रश्न-६८ आप नाम की दीक्षा क्यों नही देते है और लोगों को अपनी तरफ आकर्षित क्यों नही होने देते है ?

उत्तर- मेरा सत्संग ही नाम की दीक्षा है जो अधिकारी ध्यान से मेरा सत्संग सुनता है, जो इच्छा लेकर सत्संग में आता है, उसका काम हो जाता है। जैसे मैंने आपके नाम की दीक्षा नही दी और मेरे सत्संग व संग से ही आपको सहज ही उस नाम की अनुभूति हो गई आज नाम का संस्कार देने वाले बहुत ही महापुरुष अपना काम कर रहे है। कोई इस नाम की

इच्छा करता है तब मैं उस सज्जन को कंवर सिंह जी महाराज व जनरल साहब नेगी जी के पास या अन्य किसी भी महापुरष के पास जहां उनका विश्वास होता है, वहां भेज देता हूं। चारों तरफ सुन्दर-२ नाम देने वाले महापुरुष बैठे है। मैंने अध्यात्म में जिस नई खोज या अनुभव को किया है, उसे सत्संगो में बिना किसी मुआवजे के बताता रहता हूं। यदि लोगों को आकर्षित करके आश्रम बना कर भीड़ इक्ट्ठी कर लेता तो यह अध्यात्म का रहस्य खोल कर नही बता सकता था कि जिस विश्वासी के अन्दर मेरा रुप प्रकट होकर उनकी मद्द करता है वह उनके ही विश्वास का फल होता है। यह शक्ति किसी गुरु-पीर में नही, बल्कि विश्वास करने वाले शिष्यों के मन में होती है। मेरे गुरु जी का साहित्य इन प्रमाणों से भरा पड़ा है और यही घटनाएं हर रोज मेरे साथ घटती आ रही है और मैं सत्संगो में साफ बताता हूं कि मैं कहीं आता-जाता नही हूं और न ही मुझे इस बात का ज्ञान है कि किसके अन्दर मेरा रुप प्रकट होकर उनकी क्या मद्द करता है ? क्या आज कोई अन्य महापुरुष यह कहता है कि यह शक्ति तेरे ही मन मे है जो मेरे रुप ने प्रकट होकर तेरी सहायता की है।

मेरे गुरु पं. फकीरचन्द जी महाराज को उनके गुरु महर्षि शिवव्रतलाल जी ने कह था कि मेरे बाद यदि किसी प्रकार की कोई बात पूछनी हो तो व्यास के संत गुरु सावन सिंह जी महाराज से पूछ लेना। पं.फकीरचन्द जी ने अपने सत्संगो में सच्चाई बतानी शुरु की यानि अध्यात्म का रहस्य खोलना शुरु कर दिया तो उस समय व्यास के जो अन्धविश्वासी सत्संगी थे, वे सब उनके खिलाफ हो गए। तब उन्होने एक दिन व्यास के गुरु महाराज सावन सिंह महाराज के दरबार में जाकर प्रार्थना की कि महाराज जी मेरे गुरु महाराज जी ने मुझे सत्संग में सच्चाई बताने की आज्ञा दी थी, अब जब मैं यह

सच्चाई बताता हूं तो सत्संगी मेरा विरोध करते है और बुराई करते है। आप मुझे आदेश दें कि मैं यह सत्संग न कराऊं। तब सावन सिंह जी महाराज ने फरमाया कि फकीर। सत्संग तो सच्चाई बताने का ही नाम है परन्तु मैं खुद यह सच्चाई नही बता सका, क्योंकि एक तो आश्रम की मर्यादा है दूसरा सच्चाई का कोई अधिकारी नही। परन्तु आपको यह आज्ञा देता हूं कि आप खुलकर सच्चाई बताएं। मैं हर समय आपका रक्षक रहूंगा और कोई आपका अकाज नही कर सकेगा।

दूसरा मैं, एक बार अपने गुरु महाराज पं. फकीरचन्द जी के पास सेना से छुट्टी लेकर उनके दर्शन करने गया था मैं वहां तीन दिन तक रुक गया। तीसरे दिन जब मैं उनके पास नारायणदास की टाल पर जहां वहा बैठते थे, वहां गया तो उन्होने कहा आप घर क्यों नही गए ? क्योंकि वह मुझे दर्शन करने के बाद आज्ञा देते थे कि कोई प्रश्न नही है तो घर जाओ और अपने बाल बच्चों को सम्भालो। उस बार उनकी आज्ञा के विरुद्ध मैं वहां तीन दिन तक ठहर गया था। तब उन्होने मुझे कहा कि यदि आप मुझे तंग करें गे तो मैं आपको गुरु बना दूंगा। मैंने कहा हजूर गुरु तो बहुत बड़ा आदमी होता है। तब उन्होने मुझे गुरुवाई पर एक सत्संग दे दिया और कहा कि जिसके अशुभ कर्म होते है, वह गुरु बनते है। यह एक तरह का त्याग और तप होता है। तुमको सहज में ही नाम की अनुभूति हो गई है और क्या चाहते हो ? यह लगभग आधा घण्टे का सत्संग मुझे दिया। उस दिन से गुरुवाई का ख्याल मेरे मन से सदा के लिए समाप्त हो गया और मैं सहज में ही उस अमृत नाम का अनुभव हर समय करता रहता हूं। इसलिए मुझे जरुरत ही नही हुई कि मैं लोगों को अपनी तरफ आकर्षित करुं ?

अब आप कारण समझ गई होंगी कि मैने लोगों को आकषित करके भीड.लगाकर आश्रम क्यों नहीं बनाया है ? पहले बात तो यह है कि सच्चाई बताने से भीड़ इक्ट्ठी ही नही होती है। दूसरी बात आश्रम के लिए धन चाहिए और धन तभी आएगा जब भीड़ होगी। मैं तो संत्सगो में साफ बताता रहता हूं कि भाईयों मेरे में ऋद्धि, सिद्धि शक्ति नही यह शक्ति सत्संगी या भक्त के मन में है। बाहर के गुरु ने तो संस्कार देना है औ फल उसके विश्वास का मिलना है।

जो मेरा यह ज्ञान या रहस्य खोलना साधारण सतसंगी जो दुनिया चाहता है उसे लिए इतना लाभदायक नही है अपितु जो महापुरुष गुरुवाई कर रहे है उनके लिए जरुरी है। उनके लिए मेरा यह कहना है कि भाई महापुरुषों, आप किस चक्कर में फंस गए हो ? यह चार दिन का खेल है। अपना जीवन सुन्दर बनाओ और मन, वचन,कर्म से शुद्ध होकर काम करो ताकि आपके दर्शन और वचन से संत्संगियों का और आपका कल्याण हो। साधकों को साधक की विधि बताओ और साथ ही उन्हे यह बताओं कि तुम्हारे अन्तर में जो आपका इष्ट रुप बना कर प्रकट होकर आपकी सहायता करता है वह आपका मन ही है, बाहर से कोई गुरु, पीर, पैगम्बर नही आता है। आपका काम आपके आस-विश्वास ने करना है।

अब आपको समझ आ जानी चाहिए कि मुझे मालिक ने विशेष लोगों को पढ़ाने के लिए भेजा है। नीचे की श्रेणी वालों को पढ़ाने के लिए भारत या दूसरे देशों में बहुत से महापुरुष हैं। जैसे पी.एच.डी. को पढ़ाने वाले शिक्षक बहुत कम होते है, अर्थात मेरा ज्ञान गुरुओं व आचार्य सज्जनों के लिए है। मैं यह बात कोई अहंकार से नही कर रहा हूं।